श्री गौरांगविधुर्जयति

श्री श्री चैतन्यचन्द्रामृतं

तथा

श्री श्री संगीतमाधवम्

श्रीपादप्रबोधानंदसरस्वति
विरचितम् ।

प्रकाशकः—
कृष्णदास.
मूल्य १।)

❀ श्री श्री गौरांगविधुर्जयति ❀

भज–निताइ गौर राधेश्याम ।
जप–हरेकृष्ण हरेराम ॥

श्री श्री चैतन्यचन्द्रामृतं

परिव्राजकचूड़ामणि

श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतिपाद

विरचितं

पाटना निवासि गोस्वामि श्रीकृष्णचैतन्य

महोदयेन अनुवादितं

अर्थ सहायक—

वैष्णवदासानुदासी–राणीसरस्वतीदेवी

राजवाटी (मुंगेर)

प्रकाशकः—

बाबा कृष्णदास

कुसुमसरोवर (गोवर्द्धन) मथुरा ।

सम्वत् २००८

रथयात्रा

भूमिका

आज करुणाकरुणालय, राधा-राधारमण मिलित विग्रह, प्रेमदाता, प्रेमावतार, संकीर्तन के पिता, भगवान् श्री गौरांग महाप्रभु की कृपा रूपी महामाधुर्य्य कादम्बिनी (मेघमाला) घन घटा दिशा विदिशा समस्त भुवन में छा रही है। जिस वर्षा के प्रारम्भ मात्र से ही नवीन भक्ति शस्य समूह जीवित हो रहे हैं तथा नाना प्रकार के काम-दग्ध जगज्जीवों का तप्त हृदय शीतल हो रहा है और विश्वरूपी नदियाँ जिससे भर कर उल्लसित हो हो उछल रही हैं। इसी संबंध में कविवर मनोहरजी ने कहा है—

देखोरी इक गौरमेह ! नख सिख तें मानो धरयौ है देह॥
नृत्य करत मानो प्रेम पवन वश। नेंन झरत मानों बर्षा घनरस॥
बरण बरण आभूषण राजत। मानहु विछुल माला साजत॥
बिच २ अट्टहास मानों गर्जनि। थरहरातहि डरी मम श्रुति शुनि॥
सींचत सजल वेलि मानों उलही। भनत मनोहर नाहिं न तुलही॥

जगत् प्रसिद्ध, जगदाधार, जगन्निवास, भगवान् गौरांग-देवजी की तथा उनके भक्तगणों की कृपा से चलायमान होकर और उनहीं प्रभु की कृपा शक्ति का स्मरण करके हम इस कराल कलिकाल के कवल में कवलित जीवों के त्राणार्थ श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती महोदय द्वारा विरचित "श्रीचैतन्य चन्द्रामृत" तथा "संगीतमाधव" नामक रसिक हृदय आल्हादकारी गीतिकाव्य सानुवाद प्रकाशित कर भक्त तथा रसिक समाज में उपस्थित कर सकें। यह सर्व विदित है कि श्रीकृष्णचन्द्र ने गौरांग अवतार लेकर किस प्रकार अपार करुणा का प्रकाश किया और प्रेमवन्या में जगत् को डुबाया। ऐसा किसी युग में किसी अवतार में नहीं दिखने में आया है।

हम जगाई-मधाई उद्धार के समय इस बात की साक्षी दे सकते हैं कि दोनों ने तो प्रभुवर श्री नित्यानन्दजी को प्रहार किया किन्तु आपने उनको ब्रह्मा दुर्ल्लभ निज प्रेम धन को प्रदान करने के लिये महाप्रभु से प्रार्थना की हैं। इस अवतार में अस्त्र शस्त्र का धारण तो दूर रहा किंतु अस्त्र शस्त्र का प्रहार खाकर जग दुर्ल्लभ हरिनाम दिलाया (विलाया) गया। श्री गौरांगदेव की कृपा महिमा में अनिवार्य्य अद्भुत शक्ति है। साधारण भोले भाले मनुष्यों को किसी मार्ग में ले आना कठिन नहीं है परन्तु कठिनाई तो इस बात की है कि जो लोग विद्या बुद्धि से संसार के भूषण स्वरूप हैं उन व्यक्तियों को अपने मत में लाया जाय। प्रभु की करुणाशक्ति इस प्रकार की है कि बिना यत्न द्वारा ही सहज रूप से वे सब विद्या बुद्धि सम्पन्न मनुष्यगण अन्य विषयों से मन को हटा कर प्रभु के श्रीचरण में लगाकर अपने को प्रेम धन के धनी बना कर परम कृतार्थ और जगत् प्रसिद्ध हो गये। जो जगत् भूषण महापुरुष गण श्री गौरांग महाप्रभु के चरण कमल का आश्रय लेकर जगत् उद्धार करने में परम सामर्थ्यवान् सिद्ध हुए थे उन सबमें श्री प्रबोधानन्द सरस्वती महोदय भी हैं।

वे काशीधाम में सन्यासी वेष में विराजमान थे। उनके बाल्यकाल का इतिहास विशेष ज्ञात नहीं हैं। वे बाल्यकाल से ही अपनी असाधारण कुशाग्र बुद्धि द्वारा परम पण्डित बन गये थे तथा कालक्रम से कठोर ज्ञान (ब्रह्मानुसन्धान) और योग के साधन बल से सिद्ध होकर सन्यासी मण्डली का शिरोमुकुट होगये थे। उनका सन्यासी-आश्रम का नाम प्रकाशानन्द सरस्वती था। यह सरस्वती सम्प्रदाय सन्यासी सम्प्रदाय में प्रधान माना जाता है। इस प्रकार सरस्वती महाशय अपने

विद्या, ज्ञान और योगबल से सर्वत्र प्रसिद्ध एवं परम आदृत हो गये। उनके प्रभाव से उस समय काशी धाम शास्त्र-शिक्षा का प्रधान केन्द्र हो गया था उनके पास भारतवर्ष के नाना प्रदेशों से नाना प्रकार के छात्र समूह आकर कोई स्मृति, कोई दर्शन, कोई वेद वेदांत का शिक्षा पाकर बड़े बड़े पण्डित हो जाते थे। अन्यान्य स्थानों से हजारों विद्वान सन्यासी आकर सरस्वती जी से वेदान्त का अध्ययन करते थे। यात्रीगण भी विश्वेश्वर जी के दर्शन के उपरान्त सरस्वतीजी का चरण दर्शन कर अपने को परम पवित्र तथा कृतार्थ मानते थे।

विद्वन्मण्डली उनके साथ शास्त्रलाप का अवसर मात्र प्राप्त होने पर अपने को सफल मनोरथ तथा परम कृतार्थ मानती थी। सरस्वतीजी के साथ शास्त्र विचार करना तो दूर रहा यदि किसी दिग्विजयी का काशीधाम में आगमन होता था तो वह उनके दर्शन तथा प्रताप के श्रवण मात्र से ही अप्रतिभ और निस्तेज हो जाता था। समस्त शास्त्रों के साथ साथ वेदान्त शास्त्र में सरस्वती का विशेष पाण्डित्य था। उस समय उनके जैसे और न्याय वेदान्त के पण्डितों में भारत वर्ष भर में केवल "सार्वभौम-भट्टाचार्य्य" अतिरिक्त और कोई न था। उस समय के ये दोनों ही सर्वश्रेष्ठ अद्वितीय दार्शनिक पण्डित माने जाते थे। उन में से सार्वभौमभट्टाचार्य्य महोदय तो पहिले से ही प्रभु के शरण में आगये थे, परन्तु यह दार्शनिक सिद्धान्त शंकर मत के सम्पूर्ण आधार पर था जगत् को मिथ्या जानना, उपासनातत्व को द्वैत प्रपञ्च रूप समझना, अपने को ब्रह्म रूप मानना हो मुख्य साधना थी। इस प्रकार श्रीप्रकाशानन्द जी काशीधाम में अपने परिकर वर्ग के साथ मायावाद वेदान्त चर्चा में समय बिताते हुए बिराजमान थे। इधर ठीक ऐसे हि समय पर

श्रीनन्दनन्दन श्रीकृष्ण अपनी प्रेयसी श्री-राधिका के भावरस का आस्वादन करने के लिये तथा निज अनर्पित प्रेम धन का जीव मात्र में वितरण करने के लिये (जो कि अपने में नहीं होता था) साथ ही साथ कलियुग का परम धर्म्म नाम संकीर्त्तन प्रचार करने के लिये मधुर गौरांग रूप से श्रीधाम नवद्वीप में प्रकट हो कर २५ वत्सर वयः क्रम में ही जीव मंगलार्थ सन्यास ले कर माता की आज्ञानुसार नीलाचल धाम में विराजमान हो रहे थे। श्रीहरि नन्दनन्दन आप राधिका-भाव से विभावित तथा राधाकान्ति से ढक जाने के कारण श्यामता के स्थान पर गौरांग रूप परम मनोहर हो कर अवतीर्ण थे। भीतर तो श्यामल नन्दनन्दन और बाहर में तप्त कांचन गौरांग वर्ण यह परम मनोहर झाँकी अति अद्भुत है। कभी तो प्रेम के बेग में हाथ पाँव सिकुड़ जाने का कारण कूर्म्माकृति हो जाते थे और कभी अंग प्रत्यंग की सन्धियाँ छूट जाने पर दीर्घकार हो जाते कभी तो तप्त सुवर्ण पिण्ड के बराबर हो जाते कभी अपने कमल नयनों से अश्रुधारा इस प्रकार बहाते कि धरती कीचड़ होकर पनारे रूप से बहती थी उस के सामने जलयत्र पिचकारी तो कुछ नहीं है कभी अश्रुधारा से बड़े बड़े गढ़े भर जाते थे इस विषय में भक्तमाल के टीकाकार श्रीप्रियादासजी कहते हैं कि "आवै कभू प्रेम हेम पिण्डवत तन होत कभू संधि संधि छुटि अंग वढ़ि जात हैं, और एक न्यारी रिति आंसू पिच कारी मानों उभै लाल प्यारी भाव सागर समात है। इशता वखान करौं सो प्रमाण याकौ कहाँ जगन्नाथ क्षेत्र नेत्र निरखि साक्षात है, चतुर्भुज षटभुज रूपलै दिखाय दियो दियो जो अनुपहित वात वात पात है"—भक्तमालटीका देखिये।

श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी जीने श्रीचैतन्य चरिता

मृत ग्रन्थ में जो वर्णन किया है ठीक उस का उल्था रूप सुबल-
श्याम महोदय विरचित ब्रजभाषा के चैतन्यचरितामृत में—जो
हाल में प्रकाशित हो चुका है—

प्रभुके उद्भट नृत्य मधि अद्भुत आहि विकार ।
आठौं सात्विक भाव जे उदै भयौ इक बार ॥
मांम छिद्र सह रोम कै वृन्द सुपुलकित सोई ।
जानौं सेहड कौ सुतरु कंटक आवृत होय ॥
एक एक रद कंप लखि लागै हिय भय जोय ।
खसि परि हैं सब रदन यौं जानैं सबही लोय ॥
सबै अंग प्रस्वेद करि चलै रक्त की धार ।
ज ज क्र क्र ज ज ज गगद गद सुवचनजु कंठ मझार ॥
जनु धारा जलयंत्र की वहै अश्रु जल सोय ।
सब के भीजे अंग सकल आस पास जे लोय ॥
गौर कांति वपु देखिये कबहूँ अरुण निदान ।
कबहुँ कान्ति सुदेखिये मल्ली कुसुम समान ॥
स्तब्ध होय कबहूँ सुप्रभु परे भूमि पर सोय ।
हाथ पाँव नाहिन चलैं सुष्क काष्ठ सम जोय ॥
कबहूँ परिकै भूमि प्रभु होय स्वास विन आहि ।
प्राण क्षीन सब जननि के होय देखि करि जाहि ॥
कबहूँ नासा नेत्र जल परै वदन तैं फैन ।
अमृतधारा मानौ वहै चन्द्रबिम्ब तें ऐंन ॥
मध्यलीला १३ परिच्छेद ।

श्रीलकविकर्णपूर महोदय ने अपने "श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-
नाटक" ग्रन्थ में वृन्दाबन में प्रभु की प्रेमोन्माददशा का वर्णन
इस प्रकार किया है ।

क्वचन च यमुनाबनान्तलक्ष्मीमवकलयन्ननुरक्तिमुक्तकंठम् ।
बिलपति परिरभ्य लोभ्यबाहुः प्रतिलतिकं प्रतिसाखि सोऽखिलेशः॥

मदमुदितमयूरकंठकान्तद्युतिमभिवीक्ष्य कुतश्चिदप्यकमात् ।
स्खलति लुठति वेपते विरौति द्रवति विषीदति हन्त मूर्च्छतीशः ॥
क्वापि वत्सकुलमुच्चलपुच्छं धावमानमनुवीक्ष्य वनान्तः ।
कंटकावलिनि वर्त्मनि सद्यो वीक्षितांगमभितः स्खलतीशः ॥
कुञ्जसीमनि कदापि यदृच्छया मूर्च्छया निपतितस्य धरण्यां ।
आलिहन्ति हरिणा मुखफेणानापिबन्ति शकुना नयनाम्भः ॥

वृन्दाबन में किशोरीभावाविष्ट, अखिलेश, श्री गौरहरि कभी तो यमुनातट बनों की शोभा देख प्रत्येक वृक्ष, लता को आलिङ्गन कर विलाप कर रहे हैं। कभी तो मदमत्त मयूर की रमणीय कंठशोभा देख गिरते हैं, लोटते हैं, कांपते हैं, चिल्लाकर रोते हैं, भागते हैं, मूर्च्छित हो जाते हैं । पूँछ उठाकर धावमान वत्सगण को देख कभी तो, कंटक मार्ग में गिरते हैं, जिससे समस्त अङ्ग-प्रत्यंग क्षत-विक्षत हो जाता है। कभी तो कुञ्ज प्रांत में मूर्च्छित होकर धरती पर पड़े रहते हैं। उस समय हरिणगण आकर मुख के झाग और पक्षिगण नयन जल पान करते हैं।

इस प्रकार यह प्रेमवन्या नवद्वीप से उठी और देखते-देखते हिमालय से कुमारिका तथा सिन्धुनद से मणिपुर पर्य्यन्त समस्त भूभाग इसमें डूब गया। इसकी शीतलता से पृथिवी के जीव मात्र प्रेम के पात्र बन गये। कर्म्म, ज्ञान, योगादि के सुदृढ़ दुर्ग समूह इस प्रेमवन्या में बह गये। नास्तिक, तार्किक, अधर्म्मी, परनिन्दक, मिथ्या प्रचारक प्रभृति दुष्ट जलचर न जाने कहाँ छिप गये। इस प्रेमवन्या के स्रोत में पड़कर भक्त हंस निरन्तर कलोल करने लगे। कोई भासने लगे, कोई डूबने लगे, कोई महानन्द से तैर कर श्रीवृन्दाबन अभिमुख चलने लगे। इस प्रेमवन्या का सरस जल पान कर कोई पागल की तरह नाचने और कोई उन्मत्त की तरह गानादि करने लगे। कोई हँसने कोई रोने

लगे। यहाँ तक कि तार्किकादि दुष्ट जलचर समूह सरस बनकर प्रेम के पात्र बन गये। इस प्रकार इस प्रेमवन्या ने समस्त विश्व को प्लावित कर दिया,केवल महान् तिमीरूप एक प्रकाशानन्द सरस्वती जी का ही अधिकार इस काशी राज्य में न था। अभी मानो उनका प्रवेश वर्जित था। काशी धाम सरस्वती जी के प्रभाव से अटूट था, भारत के समस्त सम्प्रदाय गौरांग प्रेम में उन्मत्त हो गये। परन्तु स रिकर सरस्वती महाशय ही बाकी रह गये। उनने अपने परिकर वर्ग को अपनी आपत्त में रखने के लिये नाना प्रकार की चेष्टाओं का आश्रय लिया। सर्वदा शिष्यों को कहने लगे कि शिष्यगण। गौरांग का भाव कालि (वूचरू की भाव) काशी में नहीं बिकेगा। देखो गौराङ्ग संन्यासी होकर संन्यासी धर्म्म-बेदान्त पाठादि बिलकुल विसर्ज्जन करके भावुक की तरह केवल लोक प्रतारण करता हुआ नाँच कूद करता घूम रहा है। कुछ निरीह भोले भाले लोगों को भुला कर संकीर्त्तन में नचाना क्या संन्यासी का धर्म्म है? बड़ी आश्चर्य की बात है कि सार्वभौमभट्टाचार्य सा जगत् विजयी विद्वान्, परम प्रामाणिक, वृद्ध, पूज्य, एक बालक संन्यासी के मत में आकर पागल हो रहा है। तुम सबको सावधान किए देता हूँ कि किसी भी प्रकार गौराङ्ग की चतुराई में मत पड़ना। उसका मत अत्यन्त असार तथा शास्त्र विरुद्ध है। इस प्रकार जैसे २ गौराङ्गदेव की महिमा ऐश्वर्य्य-अद्भुत कार्यकलाप जनता में फैलने लगे वैसे ही वैसे सरस्वती जी का ईर्षानल दाँव २ कर जल उठने लगा। अब केवल प्रभु की निन्दा चर्च्चा ही नित्यक्रिया रूप मान लिया। सर्वदा उनकी चेष्टा बह रही कि एक बार चैतन्य का साक्षात् हो बस उसे परास्त कर अपने मत में करलूँ, जिससे भ्रान्त उनके साथीगण भी उसका मत छोड़ कर मेरे मत

में आय जावेंगे, अन्त में सरस्वती जी ने धैर्य्य शून्य होकर पत्र द्वारा ही विचार विनिमय प्रारम्भ कर दिया। उसमें जब वे परास्त होने लगते तो अन्त में क्रोधान्ध होकर पत्र द्वारा गाली देने लगे। प्रेमावतार प्रभु ने गाली का कुछ उत्तर नहीं दिया। सरस्वती जी का उद्धार करने के लिये भक्तों ने प्रभु से बहुत कुछ कहा किन्तु प्रभु मन्द हँसी से मुस्काने लगे।

अब करुणावरुणालय श्रीप्रभु गौराङ्गदेव श्रीबृन्दाबन यात्रा के लिए काशीधाम में उपस्थित हुए, तपनमिश्र के घर में आपकी स्थिति हुई। प्रकाशानन्दजी से बहुत कुछ निन्दावाद सुनना पड़ा। वहाँ के भक्तगण भी अधैर्य्य होने लगे। उनके उद्धार के लिये भक्तों ने बहुत कुछ प्रभु से प्रार्थना की। किन्तु उनके उद्धारके लिये शुभ समय नहीं आया था और प्रभु वृन्दाबन के लिये चल दिये। लौटते हुए भगवान चैतन्यदेव बृन्दाबन से प्रयाग होकर काशीधाम में आये और फिर वहाँ कुछ दिवस निवास करने लगे।

प्रभु के किसी भक्त ने किसी उत्सव के उपलक्ष में समस्त सन्यासीगण तथा सगण महाप्रभु का भी आह्वान किया। यद्यपि अब तक प्रभु ने काशी में किसी संन्यासी मण्डल का निमन्त्रण नहीं ग्रहण किया था तो भी आज सरस्वती जी के उद्धार का शुभ समय जानकर निमन्त्रण मान लिया। संन्यासी समाज इकट्ठे हुए। अब श्री सरस्वती जी संन्यासी मण्डली के बीच तारायों में चन्द्रमा की तरह ऊँचे आसन पर बैठ कर गौराङ्गदेव की प्रतीक्षा करने लगे। सगण प्रभु हरिबोल बोलते हुए वहाँ पर आये तथा सबसे नीचा स्थान जहाँ कि संन्यासीगण पाँव धोते हुए थे वहाँ बैठने लगे। उनका कोटिसूर्य्य सदृश तेज तथा तप्त-कांचन अङ्ग छटा को देख कर सरस्वती जी निरुत्तर, निरुत्साह,

और निस्तेज होगये। साथ ही साथ इस प्रकार दीनता भाव को देखकर आश्चर्य चकित भी हो गये। उनका ऊँचा अभिमान पर्वत ढह गया। गौरव, गाम्भीर्य्य रूपी शिखर गिरने लगे। वे भीतर ही भीतर कांपने तो लगे, परन्तु गौरव शिखर को बड़ी चेष्टा के साथ रोकने लगे। अन्त में उन्हें ऊँचा आसन से उठना पड़ा। आपने उठकर प्रभु से कहा श्रीपाद! ऊँचे आसन पर आइये। प्रभु ने कहा—मैंने तो भारती सम्प्रदाय में संन्यास वेष लिया है। भारती सम्प्रदाय सबसे नीचा है। मेरा बैठने का स्थान यही है। तब सरस्वती जी ने हाथ पकड़ कर प्रभु को उठाया एवं ऊँचा आसन दिया। दोनों में शास्त्र विचार हुआ। प्रभु ने मायावाद विवर्त्तवाद का दूषण देकर परिणाम बाद की ही स्थापना की। परिशेष में सरस्वती जी को पराजित होना पड़ा। अब तो प्रभु "हरिबोल" "हरिबोल" कहकर भुजा उठाकर नृत्य करने लगे। अन्त में सरस्वती जी भी भुजा उठाकर नाचने लगें। साथ ही साथ संन्यासी मण्डली भी "हरिबोल-हरिबोल" कहकर नाचने लगी। इस प्रकार काशी नगरी आज तुमुल हरि संकीर्त्तन से गूंज उठी। आज महाप्रभु श्रीकृष्ण-चैतन्यदेव ने प्रकाशानन्द सरस्वती जी पर परिपूर्ण कृपा की। अब तो कृपाशक्तिवन्या के भँवर में पड़कर श्रीसरस्वती जी डूब गये। प्रेमोन्मत्त होगये। मेरा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये, कहकर प्रभु के श्रीचरण पकड़ कर वे रोने लगे। प्रभु ने यथेष्ठ कृपा कर उन्हें चिरकाल के लिये अपनाया। वे भी चिरकाल के लिये सगण प्रभु चरण में बीक गये। काशी दुर्ग जय हुआ। उन्हें प्रभु ने प्रकाशानन्द के स्थान पर प्रबोधानन्द नाम देकर वृन्दावनके लिये भेज दिया। इस विषयमें विशेष जानने कीइच्छा हो तो चैतन्यचरितामृतादि ग्रन्थ देखें। श्रीपाद सरस्वतीजी ब्रज-

लीला में तुङ्गविद्या सखी माने जाते हैं। यहाँ शंका हो सकती है कि वे प्रभु विमुख होकर मायावादमें किस प्रकार आगये। इसका समाधान यह है कि यह सब प्रभु की इच्छा से ही हुआ। इस प्रकार विपरीत भाव देकर इनके द्वारा असंख्य मायावादीयों का उद्धार करना प्रभु का गूढ़ आशय था। जगत में सब कोई इस बात को जानेंगे कि प्रभु ने सरस्वती जी के बराबर मायावाद के अद्वितीय विद्वान् का उद्धार कर असंख्य मायावादीयों को निज प्रेमामृत पान कराया है। यह प्रभु की एक लीला है। इस लीला की पूर्त्ति के लिये भक्त भी विपरीत भाव का आश्रय लेता है। जय विजय के प्रसंग में हम यह सब बात अनुभव कर सकते हैं। जब प्रभु की युद्ध लीला करने की इच्छा हुई तथा जब आपने अपने प्रतिद्वन्दी किसी को नहीं देखा तब कुछ प्रभु में अपूर्त्ति भाव आया। क्योंकि इच्छा शक्ति की पूर्त्ति न हो सकी। इस अपूर्ति भाव को दूर करने के लिये केवल प्रभु सुख में तात्पर्य्य रखने वाले जय विजय ने अपने अनुकूल भाव को छोड़ कर प्रतिकूल दैत्य भाव का ग्रहण किया जिससे प्रभु का सुख हो, नहीं तो जय विजय से प्रभु पार्षद कदाचित् दैत्य नहीं बन सकते थे। ऋषि श्राप तो छल मात्र है, बैकुण्ठ में उसका संपूर्ण अभाव है। जब सरस्वतीजी अपने पूर्व स्वरूप में आगये तो उनका ढका हुआ पूर्व भाव जाग्रत होने लगा। वे अपने प्राणाधार प्रभु को पहचान गये। तुरन्त ही सबको तिलाञ्जलि दे वह केवल प्रेम पथ के ही पथिक बन गये। प्रभु की प्रेम-मदिरा पीकर वे हँसने लगे, रोने लगे, नाचने लगे, कूदने लगे, उन्मत्त होने लगे। उस प्रेमोन्माद दशा में आकर प्रभु के गुण महिमा सूचक श्लोकों का वर्णन करने लगे, जो "श्रीचैतंन्यचन्द्रामृत" करके प्रसिद्ध है, व्यासजी की समाधि भाषा होने के कारण

श्रीभागवत जिस प्रकार सर्वोपरि माना जाता है, प्रेमोन्मत्त अवस्था में गाने के कारण जैसा कि विल्बमंगल का कृष्णकर्णामृत सर्वोपरि ऊंचा ग्रन्थ माना जाता है, ठीक उसी प्रकार प्रेमोन्मादन अवस्था में आकर गान करने के कारण "यह चैतन्यचन्द्रामृत" भी सर्वोपरि ग्रन्थ माना जाता है। यों तो गौड़ीय आचार्य्यों में किसी ने ब्रज की उत्कर्षता किसी ने राधा की उत्कर्षता किसी ने महाप्रभु की उत्कर्षता दिखायी है। परन्तु सरस्वतीचरण ने एकाधार सब की उत्कर्षता दिखायी है। उनके द्वारा विरचित "वृन्दाबन शतक" देखने से पता चलता है कि ब्रज उत्कर्षता वर्णन करने में वे सर्वोपरि सिद्ध रूप हुए। ब्रज महिमा वर्णन करने में—"वृन्दाबन शतक" छोड़ कर न अब तक कोई ग्रन्थ हुआ न होगा। सुनते हैं कि वृन्दाबन शतक की संख्या १०० है। उनमें से नवद्वीप धामवासी श्रीयुक्त हरिदासदास बाबाजी महाराज कर्तृक सत्तरह शतक सानुवाद बंगाक्षर में प्रकाशित हो चुके हैं। अवशिष्ट शतकों का कोई पता नहीं है। सरस्वती जी केवल गौरनिष्ट व ब्रजनिष्ठ ही न थे, आप राधिका-निष्ठा में भी महान् हुए। मधुसूदनदास अधिकारी "श्रीवैष्णव-संगिनी" कार्य्यालय-एलाटी पोस्ट-जेला हुगली महोदय द्वारा बंगाक्षर में प्रकाशित राधारससुधानिधि ग्रन्थ का अनुवाद देखने से इस बात का पता चलता है।

आप ग्रन्थकार भी चैतन्यचन्द्रामृत में कहते हैं कि—

यथा यथा गौरपदारविन्दे विन्देत भक्तिं कृतपुण्यराशिः।
तथा तथोत्सर्पति हृद्यकस्माद्राधापदाम्भोजसुधाम्बुराशिः॥

कृत्य पुण्यपुञ्ज फल से श्रीगौराङ्ग पदारविन्द में भक्ति लाभ होता है। गौराङ्गभक्ति जिसकी यादृश परिमाण से उदय होती है उधर उसकी तादृश परिमाण में प्रेमसुधासागर राधा-चरण कमल का उच्छ्वास हृदय में उदय होता है। —कृष्णदास.

॥ श्री राधारमणो जयति ॥

श्री प्रबोधानन्दप्रबोधकाय

श्री श्री भगवते गौरचन्द्राय नमः

श्री चैतन्यचन्द्रामृतम्

स्तुति प्रकरणम् ।

स्तुमस्तं चैतन्याकृतिमतिविमर्य्यादपरमा—
दूभुतौदार्य्यं वर्य्यं व्रजपतिकुमारं रसयितुं ।
विशुद्धस्वप्रेमोन्मदमधुरपीयूषलहरीं
प्रदातुं चान्येभ्यः परपदनवद्वीपप्रकटम् ॥ १ ॥
धर्म्मास्पृष्टः सततपरमाविष्ट एवात्यधर्मे
दृष्टिं प्राप्तो नहि खलु सतां सृष्टिषु क्वापि नोसन् ।
यद्दत्ताश्रीहरिरससुधास्वादमत्त प्रनृत्य
त्युच्चैर्गायत्यथ विलुठति स्तौमि तं कञ्चिदीशम् ॥ २ ॥

जो श्री चैतन्य स्वरूप अपनी पवित्र और उन्माद पैदा करने वाली मीठी प्रेमामृतधारा को आप ही चखने के लिये और दूसरे मनुष्य मात्र को उसे चखाने के लिये तथा अत्यन्त मर्य्यादा शून्य परम अद्भुत औदार्य्य श्रेष्ठ श्री ब्रजराज नन्दन को आस्वादन के लिये बड़े उत्तम श्री नवद्वीप धाम में आविर्भूत (प्रगट) हुए थे, उनही ब्रजपति पुत्र स्वरूप, सब अवतारों में श्रेष्ठ, बड़े उदार, प्रसिद्ध भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की हम वन्दना करते हैं ॥ १ ॥

जो मनुष्य, धर्म का स्पर्श मात्र भी नहीं कर सके (अर्थात् जिन्होंने जरा भी पुण्य नहीं किया) वरन् सदा अधर्म्म की कीचड़

यन्नाप्तं कर्म्मनिष्ठै र्नच समधिगतं यत्तपो ध्यानयोगै
र्वैराग्यैस्त्यागतत्वस्तुतिभिरपि न यत्तर्कितञ्चापि कैश्चित्।
गोविन्दप्रेमभाजामपि न च कलितं यद्रहस्यं स्वयं त
न्नाम्नैव प्रादुरासीदवतरति परे यत्र तं नौमि गौरम् ॥ ३ ॥
दृष्टः स्पृष्टः कीर्तितः संस्मृतो वा,
दूरस्थैरप्यानतो वादृतो वा।
प्रेम्णः सारं दातुमीशो य एकः
श्री चैतन्यं नौमि देवं दयालुम् ॥ ४ ॥

में ही फंसे रहे और जो पापों को नाश करने वाले साधुजनों की दृष्टि में भी नहीं पड़े, या सज्जनों के स्थानों में जिन लोगों का आवागमन भी नहीं है ऐसे दुराचारी व्यक्ति भी जिनकी दी हुई, श्रीराधाकृष्ण प्रेम रूपी सुधा का आस्वाद पा, प्रेमोन्मत्त होकर नाचते और पृथ्वी में विह्वल होकर लोटते हैं, उन अनिर्वचनीय दयालु प्रभु की स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

जो कर्म्म निष्ठ (कर्म्म काण्डी) मनुष्यगण नहीं पाते हैं,तप करने से या भगवत् ध्यान से और अष्टाङ्ग योग द्वारा भी जो दुर्लभ है, जो वैराग्य (केवल भगवत भजनेच्छा) त्याग (सांसारिक सुखत्याग) तत्वज्ञान, और अनेक स्तुति से भी जो अप्राप्त है, अधिक क्या श्री-गोविन्द उपासक प्रेमी व्यक्ति को भी जो दुर्ल्लभ है, वही गूढ़ प्रेम जिनके प्रकट होते ही स्वयं नामोच्चारण मात्र से प्रकाश हुआ था, उनहीं गौर शरीर श्री कृष्ण चैतन्य प्रभु को प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥

जो केवल दर्शन, आलिङ्गन या नामोच्चारण मात्र से ही, अथवा रूपलावण्य आदि द्वारा दूर देश वासियों से स्मरणीय नमस्कृत होतेही प्रेम का सार देने में समर्थ हैं, उन परम दयालु श्री चैतन्यचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४ ॥

कैवल्यं नरकायते त्रिदशपूराकाशपुष्पायते
दुर्दान्तेन्द्रियकालसर्पपटली प्रोत्खातदंष्ट्रायते ।
विश्वं पूर्णसुखायते विधिमहेन्द्रादिश्च कीटायते
यत्कारुण्यकटाक्षवैभववतां तं गौरमेव स्तुमः ॥ ५ ॥
माद्यन्तः परिपीय यस्य चरणाम्भोजस्रवत्प्रोज्ज्वल—
प्रेमानन्दमयामृताद्भुतरसान् सर्वे सुपर्वेड़िताः ।
ब्रह्मादींश्च हसन्ति नाति वहुमन्यन्ते महावैष्णवान्
धिक्कुर्वन्ति च ब्रह्मयोगविदुषस्तं गौरचन्द्रं नुमः ॥ ६ ॥
रक्षोदैत्यकुलं हतं कियदिदं योगादिवर्त्मक्रिया
मार्गो वा प्रकटीकृतः कियदिदं सृष्ट्यादिकम्वा कियत् ।
मेदिन्युद्धरणादिकं कियदिदं प्रेमोज्ज्वलाया महा—
भक्तेर्वर्त्मकरीं परं भगवतश्चैतन्यमूर्तिं स्तुमः ॥ ७ ॥

जिन की करुणा दृष्टि रूप सम्पत्ति को पाकर मनुष्यगण मोक्ष को नरक के समान, स्वर्ग को आकाश पुष्प के तुल्य, इन्द्रियों को दांत उखाड़े हुए काल सर्पों के समान अकिंचित कर, संसार को सुखमय, और ब्रह्मा आदि देवताओं को कीट के बराबर जानते हैं, उन करुणामय श्री गौरहरि को स्तव करते हैं ॥ ५ ॥

देवता लोगों से भी वन्दित श्री गौर भक्त गण जिन पाद-पङ्कजों से निकलते हुए, स्वच्छ, प्रेमानन्द मय, अमृत के समान आश्चर्य्य रस को पीकर ब्रह्मा आदि देवों के भी यह कहकर कि,—"अहाहा! ये सब देवता गण श्री चैतन्य पदारविन्द मकरन्द रस का अनुभव नहीं कर सकते?" हँसते-और केवल विष्णु भक्त महा वैष्णवों को उस विचित्र रस के नहीं पी सकने के कारण अधिक सन्मान नहीं करते हैं एवं ब्रह्मवादियों की निन्दा करते हैं,उन श्रीगौरचन्द्र के चरणों में मैं नत होता हूँ ॥ ६ ॥

राम, नृसिंह, कृष्ण आदि मूर्ति से दैत्य, राक्षस कुल के

॥ अथ प्रणामः ॥

नमश्चैतन्यचन्द्राय, कोटिचन्द्राननत्विषे ।
प्रेमानन्दाब्धिचन्द्राय, चारुचन्द्रांशुहासिने ॥ ८ ॥
यस्यैव पादाम्बुजभक्तिलभ्यः प्रेमाभिधानः परमः पुमर्थः।
तस्मै जगन्मङ्गलमङ्गलाय चैतन्यचंद्राय नमो नमस्ते ॥९॥
उच्चैरास्फालयन्तं करचरणमहो हेमदण्डप्रकाण्डौ
बाहू प्रोद्धृत्य सत्ताण्डवतरलतनुं पुण्डरीकायताक्षं
विश्वस्यामङ्गलघ्नं किमपि हरिहरीत्युन्मदानंदनादै
र्वन्दे तं देवचूडामणिमतुलरसाविष्टचैतन्यचंद्रम् ॥१०॥

विनाश करने में क्या बड़ी बात थी ? कपिल आदि अवतार में योग आदि मार्ग की क्रिया दिखलाने में क्या महत्व था ? ब्रह्मादि रूप से सृष्टि करने में क्या महत्व था ? या बराहादि के स्वरूप से पृथ्वी उद्धार में कौन विशेषता थी ? हाँ ! प्रेमोज्वल महा भक्ति मार्ग प्रदान में बेशक महत्ता है, इसलिए कलियुग में परम-प्रेमोज्वल महाभक्तिमार्ग प्रदर्शिनी (को दिखाने वाली) भगवत् की श्री चैतन्य मूर्ति की ही केवल हम सब स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

अहा ! जिन के मुख की कान्ति करोड़ों चन्द्रमा से भी बढ़ी चढ़ी है, जो प्रेम से उत्पन्न आनन्दरूपी समुद्र के चन्द्र स्वरूप हैं और जिनका हास्य चन्द्रकिरण सा मनोहर है; उन श्री चैतन्य चन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥

जिनके चरणाम्भोज में केवल भक्ति से ही, प्रेम नाम का उत्तम पुरुषार्थ प्राप्त होता है, उन संसार के मंगल के भी मंगल रूप श्री चैतन्य चन्द्र को नमस्कार ! नमस्कार !! ॥ ९ ॥

जो नाचने के समय इधर उधर, कर और चरणों को

आनन्दलीलामयविग्रहाय हेमाभदिव्यच्छविसुन्दराय ।
तस्मै महाप्रेमरसप्रदाय चैतन्यचन्द्राय नमो नमस्ते ॥११॥
प्रवाहैरश्रूणां नवजलदकोटी इव दृशौ
दधानं प्रेमर्द्धया परमपदकोटीप्रहसनं ।
वमन्तं माधुर्य्यैरमृतनिधिकोटीरिव तनु—
च्छटाभिस्तंवन्दे हरि महह सन्यासकपटम् ॥ १२ ॥

—अथाशीर्वादः—

सिंहस्कंधं मधुर मधुर स्मेर गण्डस्थलान्तं
दुर्विज्ञेयोज्ज्वल रस मयाश्चर्य्य नाना विकारम् ।

घुमाते हैं, जो सोने के दण्ड के समान अपनी दोनों भुजाओं को ऊँचा कर मनोरम नृत्य द्वारा अपने शरीर को चञ्चल करते हैं। जिनकी आंखें कमल के समान बड़ी बड़ी हैं और जो भगवत् ध्यान से उन्मत्त होकर "हरि-हरि" इस आनन्दकारी शब्द से संसार के अमंगलों का नाश करते हैं, उन देव शिरोमणि अनन्त रस मग्न श्री चैतन्य चन्द्र की मैं बन्दना करता हूँ ॥१०॥

आनन्द मय लीला देह धारी, सोने की उत्तम कान्ति द्वारा मनोहर महाप्रेमरस दानी श्री चैतन्यचन्द्र के चरणों में अशेष प्रणाम निवेदन करता हूँ ॥ ११ ॥

अहो, जिनके नयन युगल नवीन वारिद के समान आँसुओं की धाराओं को बरसाते हैं, जो प्रेम धन से करोड़ों वैकुण्ठों की भी अवज्ञा करते ,हैं जो श्री अंग की उत्तम छटा से या मनोहरता से करोड़ों सुधा सागरों को लहराते हैं, उन लीलार्थ सन्यास ग्रहण करने वाले गौर हरि की बन्दना करता हूँ ॥१२॥

सिंह के से स्कन्ध वाले, कपोलों के प्रांत भाग में मन्द मन्द मुसक्यान युक्त, अविचारित रस मय बहुत से आश्चर्य विकाशो

विभ्रत्कान्तिं बिकच कनकाम्भोज गर्भाभिरामा
मेकीभूतं बपुरवतु वो राधया माधवस्य ॥ १३ ॥
(वन्दे श्री कृष्ण चैतन्यं गौरं कृष्णमपिस्वयं ।
यो राधाभावसंलुब्धः स्वभावं नितरां जहौ) ॥❀
दृष्ट्वा माद्यति नूतनाम्बुदचयं सम्वीक्ष्य वर्हं भवे
दत्यन्तं बिकलो बिलोक्य बलितां गुञ्जाबलीं बेपते ।
दृष्टे श्यामकिशोरकेऽपि चकितं धत्ते चमत्कारिता
मित्थं गौरतनुः प्रचारितनिजप्रेमो हरिः पातु वः ॥ १४ ॥

से सम्पृक्त, खिले हुए पीले कमल के केशर से भी अधिक मनोहर प्रभावान् श्रीराधाकृष्ण के, एकीभूत शरीर को धारण करने वाले, गौर हरि, आप लोगों की रक्षा करें ॥ १३ ॥

जो नये मेघों को देखकर मतवाले हो जाते है, मोरचन्द्रिका को देखकर बड़े विकल हो जाते हैं, गोलाकार गुञ्जाहार देखकर कांपने लगते हैं, और श्याम किशोर मनुष्य को देखकर चकित हो जाते हैं, यों अपने निर्मल प्रेम का प्रचार करने वाले गौरहरि आप लोगों की रक्षा करें ॥ १४ ॥

जो कृपा सिन्धु, सन्ध्या के समान विचित्र लाल वस्त्र धारी तेजोमय शरीर वाले, स्वयं भगवान, प्रेमामृत मय अति विमल कान्ति धारी और शची देवी के गर्भ रूपी क्षीरसागर से उत्पन्न हैं,

---

❀ जिन्होंने राधाभाव में लोभित होकर अपने स्वभाव को छोड़ दिया है, और स्वयं गौर कृष्ण हैं, ऐसे श्री कृष्णचैतन्य की मैं वन्दना करता हूँ । ❀

❀ इस श्लोक को 'लघुभागवतामृत' की टीका में श्रीवृंदावन चन्द्रतर्कालंकार ने चन्द्रामृत का उल्लेख कर उसको अति पवित्र और प्रामाणिक सिद्ध किया है ।

कृपासिन्धुः सन्ध्यारुणरुचिविचित्राम्बरधरो—
ज्ज्वलः पूर्णः प्रेमामृतमयमहाज्योतिरमलः ।
शचीगर्भक्षीराम्बुधिभव उदाराद्भुतकलः
कलानाथः श्रीमानुदयतु तव स्वान्तनभसि ॥ १५ ॥
बध्नन् प्रेमभरप्रकम्पितकरो ग्रन्थीन् कटीडोरकैः
संख्यातुं निजलोकमङ्गलहरेकृष्णेति नाम्नां जपन्
अश्रुस्नानमुखः स्वमेवहि जगन्नाथं दिदृक्षुर्गता
यातैर्गौरतनुर्विलोचनमुदं तन्वन् हरिः पातु वः ॥ १६ ॥
अन्तर्ध्वान्तचयं समस्तजगतामुन्मूलयन्ती हठात्
प्रेमानन्दरसाम्बुधिं निरवधि प्रोद्वेलयन्ती बलात् ।
विश्वं शीतलयन्त्यतीव विकलं तापत्रयेणानिशं
युष्माकं हृदये चकास्तु सततं चैतन्यचन्द्रच्छटा ॥ १७ ॥

श्री चैतन्यभक्ति महिमा

भ्रान्तं यत्र मुनीश्वरैरपि पुरा यस्मिन् क्षमामण्डले

वही कलानाथ श्रीमान् गौरचन्द्र तुम लोगों के हृदयाकाश में उदित हों ॥ १५ ॥

जो संसार के मङ्गल स्वरूप अपने "हरेकृष्ण" नाम को जपते हुए, जप संख्या के लिये प्रेम से कम्पायमान हाथों द्वारा कटि सूत्र में गांठ बाँधते हैं, और जो प्रेम के आँसुओं से सिक्त मुख होकर अपने दूसरे रूप श्री जगदीश के दर्शनों के लिये गमन आगमन द्वारा सांसारिक जीवों की आंखों का आनन्द बढ़ाते हैं, वही श्री गौरमूर्ति धारण करने वाले हरि तुम लोगों की रक्षा करें ॥ १६ ॥

समस्त संसार में रहने वाले अन्धकार को अचानक नाश करने वाली, जबरदस्ती (बल पूर्वक) प्रेमानन्द समुद्र को सदा

कस्यापि प्रविवेश नैव धिषणा यद्वेद नो वा शुकः।
यन्न क्वापि कृपामयेन च निजेऽप्युद्घाटितं शौरिणा
तस्मिन्नुज्ज्वलभक्तिवर्त्मनि सुखं खेलन्ति गौरप्रियाः ॥१८॥
तावद्ब्रह्मकथा विमुक्तिपदवी तावन्न तिक्ती भवे-
त्तावच्चापि विशृंखलत्वमयते नो लोक वेदस्थितिः।
तावच्छास्त्रविदां मिथः कलकलो नाना वहिर्वर्त्मसु
श्री चैतन्यपदाम्बुजप्रियजनो यावन्न दृग्गोचरः ॥ १९ ॥
क्व तावद्वैराग्यं क्वच विषय वार्तासु नरके-

बढ़ाने वाली और तापत्रय से बड़े व्याकुल जगत को शीतल करने वाली जो श्रीचैतन्यचन्द्र के अङ्गों की शोभा है, वह तुम लोगों के हृदय में सदा प्रकाशित हो ॥ १७ ॥

पहिले जिस मार्ग में व्यास आदि ऋषिगण भी भटके जिसमें पहिले (श्री गौरांगावतार के) किसी की भी बुद्धि नहीं प्रवेश हुई एवं जिसे शुकदेव जी ने भी नहीं जाना, और जिसे दयामय श्री कृष्ण भगवान ने भी अपने भक्तों को नहीं बताया: उसी मनोहर भक्ति पथ में श्री गौर प्रेमपात्रगण सानन्द घूमते हैं ॥ १८ ॥

जबतक श्री चैतन्य पदारविन्द के प्रियगण नहीं दीखते तभीतक ब्रह्म विचार और मोक्षपद कडुआ नहीं लगता, या लोक मर्य्यादा तथा वेद मर्य्यादा बे ठौर ठिकाने नहीं जँचती, और बाहरी रास्ते पर पड़े हुए विद्वानों का आपस में कलह हुआ करता है। अर्थात् श्री चैतन्य भक्तों के दर्शन मात्र ही से उपर्य्युक्त बातें निकम्मी मालूम हो जाती हैं, और अभक्त गणों के हृदय में भक्ति का सञ्चार हो जाता है अहा! क्या ही उत्तम भक्ति की महिमा है ॥ १९ ॥

श्री गौरांग चरणों में भक्ति रखने वालों के बराबर वैराग्य

छिबवोद्वेग: क्वासौ विनय भरमापूर्यलहरी ।
क्व तावत्तोजो वा लौकिकमथ म ाभक्तिपदवी
क्व सा वा संभाव्या यदवकलितं गौरगतिषु ॥ २० ॥

सकृन्नयनगोचरीकृततदश्रुधाराकुल-
प्रफुल्लकमलेक्षणप्रणयकातरश्रीमुख: ।
न गौरचरणं जिहासति कदापि लोकोत्तर-
स्फुरन्मधुरिमार्णवं नवनवानुरागोन्मद: ॥ २१ ॥

आचर्य धर्म्मं परिचर्य्य विष्णुं
विचर्य्य तीर्थानि विचार्य्य वेदान् ।
विना न गौर प्रियपाद सेवां
वेदादि दुष्प्राप्य पदं विदन्ति ॥ २२ ॥

कहाँ दीखता है? वैसा विषय वार्त्तारूप नरक के प्रति तिरस्कार कहां मालूम पड़ता है ? विनय और नम्रता की वैसी तरंग ही कहां है ? या उनके समान अलौकिक प्रताप ही कहां है ? और उस तरह का महा भक्ति मार्ग ही कहां सम्भव है ॥२०॥

जो मनुष्य नए नए अनुरागों से मस्त, श्री गौर चन्द्र के आंसुओं से पूर्ण खिले हुए कमल के समान नयनों से युक्त, प्रेम से व्याकुल श्री मुख को एक बार भी देख चुके हैं, वे अलौकिक रूप से प्रकाशित मनोहरता के समुद्र तुल्य श्री गौर चन्द्र के चरणों को कभी छोड़ने की इच्छा नहीं कर सकते ॥ २१ ॥

वर्णाश्रम आदि धर्म पालन, श्री विष्णु सेवा, तीर्थाटन, और वेदार्थ विचार करने पर भी, श्री गौर भक्त गणों की सेवा के बिना वेदादि से भी दुर्लभ स्थान "श्री बृन्दावन" को कोई नहीं जान सकता ॥ २२ ॥

अपारावारञ्चेदमृतमयपाथोधिमधिकं
विमथ्य प्राप्तं स्यात्किमपि परम सारमतुलं ।
तथापि श्रीगौराकृतिमदनगोपालचरण
च्छटास्पृष्टानां तद्वहति विकटामेव कटुताम ॥ २३ ॥
तृणादपि च नीचता सहजसौम्यमुग्धाकृतिः
सुधामधुरभाषिता विषयगन्धथूथूत्कृतिः ।
हरिप्रणयविह्वला किमपि धीरनालम्बिता
भवंति किल सद्गुणा जगति गौर भाजाममी ॥ २४ ॥
उपासतां वा गुरुवर्य्यकोटी रधीयतां वा श्रुतिशास्त्र कोटीः।
चैतन्य कारुण्यकटाक्षभाजां
भवेत् परं सद्य रहस्यलाभः ॥ २५ ॥
आस्तां वैराग्यकोटिर्भवतु शम-दम-क्षांति-मैत्रादिकोटि-

पारावार से रहित अमृतमय सागर के अधिक मथन से जो अतुल अकथनीय और उत्कृष्ट (उत्तम) वस्तु मिले वहभी गौर वर्ण श्रीमदनगोपाल के चरणों की प्रभा स्पर्श करने वाले, गौरांग भक्तों को कड़वी जान पड़ती है ॥ २३ ॥

तृण से भी नीचता, स्वभाव से ही सरल मनोहर मूर्ति, अमृत सी मीठी वाणी, विषय गन्ध पर थूथूत्कारिता, और अन्य में नहीं रहने वाली (केवल हरि प्रेम में विह्वल) बुद्धि विशिष्टता, इत्यादि जो गुण हैं सो समस्त संसार में केवल गौरांग भक्त गणों में ही होता है ॥ २४ ॥

करोड़ों श्रेष्ठ गुरुओं की उपासना की जाय या करोड़ों निगमागम पुराणों का पाठ किया जाय, पर पलमात्र में गुप्त प्रेम की प्राप्ति श्री चैतन्य कृपापात्र व्यक्तियोंको ही होती है ॥ २५ ॥

वैराग्य कोटि रहे, शम, दम, क्षान्ति कोटि ही हो, तत्वानु

स्तत्वानुध्यानकोटिर्भवतु भवतु वा वैष्णवीभक्तिकोटिः
कोटय्ंशोऽप्यस्य न स्यात्तदपिगुणगणो यः स्वतःसिद्ध आस्ते
श्रीमच्चैतन्यचंद्रप्रियचरणनखज्योतिरामोदभाजाम्॥ २६ ॥

केचित्सागरभूधरानपि पराक्रामंति नृत्यंति वै
केचिद्देव पुरंदरादिषु महाक्षेपं क्षिपंतो मुहुः।
आनंदोद्भटजालविह्वलतया तेऽद्वैतचंद्रादयः
के के नोद्धतवंत ईदृशि पुनश्चैतन्यनृत्योत्सवे ॥ २७ ॥

भूतो वा भविताऽपि वा भवति वा कस्याप्रियः कोऽपिवा
सम्बंधोभगवत्पदाम्बुजरसे नास्मिन् जगन्मण्डले।
तत्सर्वं निजभक्तिरूपपरमैश्वर्येण विक्रीड़ितो
गौरस्यास्य कृपाविजृम्भिततया जानंति निर्मत्सराः ॥ २८ ॥

संधान कोटि हो, या अवैष्णव भक्ति कोटि ही होतो कुछ नहीं, किन्तु श्रीचैतन्यचन्द्र के प्रियपात्र भक्तोंके पावों के नखों की किरणों से गर्वित जो ब्यक्ति है उन्हें जो स्वभावसिद्ध गुण प्राप्त है, उसके करोड़ अंशभी गुण दूसरों को दुर्लभ है ॥ २६ ॥

अत्यंत आनंद जालमें विह्वलता से श्री अद्वैत चन्द्रादिकों में से किसीने (मुरारी गुप्तादिकों ने) समुद्र और पर्वत पर्य्यन्त उल्लंघन किया था, कोई (अद्वैतआदि) नृत्य करते थे, कोई (श्री वास इत्यादि) इन्द्रादि देवताओं को बारबार धिक्कार देते थे, अहा! उन लोगों में कौन ऐसा था, जो चैतन्य के नृत्योत्सव के समय उद्धत न हुआ हो? ॥ २७ ॥

इस संसार में भगवत्पाद पद्म रससे किसी का कोई भी विशेष सम्बन्ध न तो हुआ है, न होगा। यह सब निर्मत्सर व्यक्ति गण जिन भक्ति रूपी ऐश्वर्य के साथ नृत्य शील श्री गौरचंद्र की कृपा प्रयाश से जानते हैं ॥२८॥

अभक्तनिन्दा–महापुरुषमानिनां सुरमुनीश्वराणां निजं
पदाम्बुज मजानतां किमपि गर्व निर्व्वासनम्।
अहो नयनगोचरं निगमचक्रचूड़ाचयं
शचीसुतमचीकरत् क इह भूरिभाग्योदयः ॥ २६ ॥
सर्वसाधनहीनोऽपि परमाश्चर्यवैभवे।
गौरांगे न्यस्तभावो यः सर्वार्थपूर्ण एव सः ॥ ३० ॥
अप्यगण्यमहापुण्यमनन्यशरणं हरेः।
अनुपासितचैतन्यमधन्यं मन्यते मतिः ॥ ३१ ॥
धिगस्तु ब्रह्माहं वदनपरिफुल्लान् जड़मतीन्
क्रियासक्तान् धिग्धिग्विकटतपसो धिक् च यमिनः।
किमेतान् शोचामो विषयरसमत्तान्नरपशून्
न केषाञ्चिल्लेशोऽप्यहह मिलितो गौरमधुनः ॥ ३२ ॥

श्री गौरांग के चरणों के मिठास को विना जाने, हमही महापुरुष हैं, इस ज्ञान से गर्वित मुनीश्वरों के अहंकार को नाश करने वाले, श्रुतियों के मस्तक रत्न को अनुसंधान करने वाले (खोजने वाले) श्री शचीनन्दन को जो हमें दिखावे, ऐसा भाग्यवान कौन है ? ॥ २६ ॥

सबसे अधिक चमत्कार करने वाले, ऐश्वर्य्यशाली श्री गौरांग के प्रति जिसका चित्त समर्पित हो, वे सब साधनों से हीन होने पर भी सर्व्वार्थ शिरोमणि गूढ़ प्रेम से पूर्ण रहते हैं ॥३०॥

बहुत से बड़े बड़े पुण्य होने पर, अनन्य मन से हरि को स्मरण करने पर भी श्री चैतन्य की उपासना से हीन मनुष्य को मति धन्य नहीं कहती ॥ ३१ ॥

"मैं ही ब्रह्म हूँ" ऐसे तत्वज्ञान से प्रफुल्ल चित्त वाले व्यक्तियों को धिक्कार है, कर्माशक्त जड़ बुद्धि वाले को भी धिक्कार है। उत्तम तपस्या करने वालों को धिक्कार है और जो इन्द्रियों को

पापाणः परिसिञ्चितोऽमृतरसैर्नैवांकुरः सम्भवेत्
लांगूलं सरमापतेर्बिवृणतःस्यादस्य नैवार्जवमम् ।
हस्तावुन्नयता बुधाःकथमहो धार्य्यीविधोर्मंडलं
सर्वसाधनमस्तुगौरकरुणाभावेन भावोत्सवः ॥ ३३ ॥
अवतीर्णे गौरचन्द्रे बिस्तीर्णे प्रेमसागरे ।
सुप्रकाशितरत्नौघे यो दीनो दीनएबसः ॥ ३४ ॥
अबतीर्णे गौरचंद्रे बिस्तीर्णे प्रेमसागरे ।
ये न मज्जन्ति मज्जन्ति ते महानर्थसागरे ॥ ३५ ॥

अपने वश में कर चुके हैं, उन सब संयमियों को भी धिक्कार है, विषय रस से मतवाले इन नर पशुओं को क्या सोचें ? क्योंकि इन लोगों में कोई भी श्री गौरांग चरणाम्भोज के मधु का छींटा भी नहीं पा सकते हैं ॥ ३२ ॥

विद्वद्गण ! जैसे पत्थर के टुकड़े को अमृत से भी खूब सींचने पर अंकुर नहीं उपजता, जैसे कुत्ते की पूँछ पसार देने पर भी सीधी नहीं मालुम पड़ती, और जैसे कोई भी मनुष्य हाथ ऊँचा कर चंद्रमा का मण्डल नहीं छू सकता, वैसे सकल साधन प्राप्त होने पर भी श्री गौरचंद्र की कृपा के बिना मनुष्य, प्रेम आदि सुख का अच्छी तरह अनुभव नहीं कर सकता ॥ ३३ ॥

बड़े भारी विस्तीर्ण प्रेम समुद्र में परम उज्वल श्री गौर चंद्र ने उदित होकर, श्रवणकीर्तनादि नव--विध--भक्ति--रूपी रत्न प्रकाश किया, तो भी जो दीन (उससे हीन) रहा वह वास्तव में दीन है ॥ ३४ ॥

श्री चैतन्य चंद्र के उदय होने पर भी जो लोग विशाल प्रेम सागरमें स्नान नहीं करते, वे महा अनर्थ सागर में डूबे हैं ॥ ३५ ॥

प्रसारितमहाप्रेम-पीयूषरससागरे
चैतन्यचंद्रे प्रकटे यो दीनो दीन एव सः ॥ ३६ ॥
अचैतन्यमिदं विश्वं यदि चैतन्यमीश्वरं ।
न विदुः सर्वशास्त्रज्ञा ह्यपि भ्राम्यंति ते जनाः ॥ ३७ ॥
स्वदं स्वादं मधुरिमभरं स्वीयनामावलीनां
मादं मादं किमपि बिवशीभूतविस्त्रस्तगात्रः ।
बारम्बारं व्रजपतिगुणान् गायगायेतिजल्पन्
गौरो दृष्टः सकृदपि न यैर्दुर्घटा तेषु भक्तिः ॥ ३८ ॥
बिना बीजं किं नांकुरजननमंधोऽपि न कथं
प्रपश्येन्नो पंगुर्गिरिशिखरमारोहति कथं ।
यदि श्री चैतन्ये हरिरसमयाश्चर्यविभवेऽ-
प्यभक्तानां भावी कथ मपि परप्रेमरभसः ॥ ३९ ॥

श्री कृष्णचैतन्यचंद्र ने प्रकटित होकर, प्रेम रूपी महा अमृत सागर विस्तार किया, तो भी जो मनुष्य दीन (उस अमृत पीने में असमर्थ) हैं वे सचमुच दीन (कङ्गाल) ही हैं ॥ ३६ ॥

यह जगत अचैतन्य जड़रूप है। यदि ईश्वर श्री चैतन्य को न माने तो सकल शास्त्र वेत्ता पण्डितगण भी 'अचैतन्य संसार में' व्यर्थ घूमते है ॥ ३७ ॥

जो "हरे कृष्ण-आदि" अपनी नामावली के बड़े मीठे आस्वादन करते करते मत्त हो हो कर अकथनीय रूप से विवश और स्खलित शरीर हुए हैं, और जो सब लोगों से "कृष्णचन्द्र की गुणावली-गान करो" यह बराबर कहते हैं, उन श्री गौर हरि को जो एक बार भी नहीं देख सके उन्हें गूढ़ भक्ति प्राप्त होना असंभव ही है ॥ ३८ ॥

यदि अपने भक्ति रस स्वरूप अत्युत्तम धन वाले श्री

अलौकिकया प्रेमोन्मदरसविलासप्रथनया
न यः श्रीगोविंदानुचरसचिवेष्वेषु कृतिषु ।
महाश्चर्यप्रेमोत्सवमपि हठाद्दातरि न य-
न्मतिर्गौरे साक्षात् परइह स मूढ़ो नरपशुः ॥ ४० ॥

असंख्याः श्रुत्यादौ भगवदवतारा निगदिताः
प्रभावं कः सम्भावयतु परमेशादितरतः ।
किमन्यत्स्वप्रेष्ठे कति कति सतां नाप्यनुभवा
स्तथापि श्री गौरे हरि हरि न मूढ़ा हरिधियः ॥ ४१ ॥

चैतन्य देव में भक्ति नहीं करने वाले मनुष्यों को किसी तरह आप ही भगवद्विषयक प्रेम मिल जाय, तो बिना बीज के अंकुर क्यों नहीं उपजता ? अन्धे क्यों नहीं देख सकते ? या पंगु (लुञ्ज) सुमेर पर्वत के शिखर पर ही क्यों नहीं चढ़ सकते ॥ ३९ ॥

जो प्रेम से निकलते हुए, आनंद रस बिलास के अलौकिक विस्तार से श्री राधागोविंद-पार्षद रूप में सहायता करने वाले हैं, अतः कृती मनुष्य को अति चमत्कारिक प्रेमानंद अनायास ही देते हैं, उन्हीं साक्षात् परमेश्वर श्री गौर हरि में जिसकी भक्ति नहीं है, वह मूर्ख, और मनुष्य रूप में पशु के बराबर है ॥ ४० ॥

वेद, पुराण, इतिहास आदि में भगवान के असंख्य अवतार कहे गये हैं, पर श्री गौरांग में जैसा अलौकिक प्रभाव दीखता है, वह परमेश्वर को छोड़ कर दूसरे व्यक्ति में कौन मान सकता है । अधिक क्या ? श्री गौर कृष्ण के भक्तों वह प्रभाव हजारों बार अनुभव करते देखकर भी जो मनुष्य

साक्षान्मोक्षादिकार्थान् विविधविकृतिभिस्तुच्छतां दर्शयन्
प्रेमानन्दं प्रसूते सकलतनुभृतां यस्य लीलाकटाक्षः।
नासौ वेदेषु गूढ़ो जगति यदि भवेदीश्वरो गौरचंद्र
स्तत्प्राप्तोऽनीशवादः शिव शिव गहने विष्णुमाये नमस्ते॥४२

धिगस्तु कुलमुज्वलं धिगपि वाग्मितां धिग्यशो
धिगध्ययनमाकृतिं नववयः श्रियञ्चास्तु धिक्।
द्विजत्वमपि धिक् परं विमलमाश्रमाद्यञ्च धिक्
न चेत् परिचितः कलौ प्रकटगौरगोपीपतिः ॥ ४३ ॥

अहो बकुण्ठस्थैरपि च भगवत्पार्षदवरैः
सरोमाञ्चं दृष्टा यदनुचरवक्रेश्वरमुखाः।

श्री गौर चंद्र में परमात्मा बुद्धि नहीं करते, हाय ! वे बड़े ही मूर्ख है ॥ ४१ ॥

जिन गौर चन्द्र का लीला कटाक्ष, समस्त जीवों को अनेक विकारों के कारण साक्षात मुक्ति को तुच्छता बोधक और प्रेमानन्द को उत्पन्न करता है, और वेद में गुप्त रूप से वर्तमान है, वही गोरचन्द्र यदि सन्सार में ईश्वर न हो तो संसार निरीश्वर हुआ, शिव शिव ! हे अज्ञात-प्रभाव-विष्णुमाये ! तुझे नमस्कार है ॥ ४२ ॥

कलियुग में प्रकटित गोपी पति श्री गौर हरि यदि उपासित नहीं हुए तो उत्तम कुल, बावदूकता (वाचालता) कीर्ति, अध्ययन, सुन्दर आकृति किशोर अवस्था, अधिक सम्पत्ति, ब्रह्मणवंश में उत्पत्ति, और ब्रह्मचर्य्य आदि आश्रम सब को ही बार बार धिक्कार है ॥ ४३ ॥

जिन श्री चैतन्यदेव के सेवक बक्रेश्वर इत्यादि, बड़े आश्चर्य्य प्रेमोज्ज्वल रस में सदा मग्न होकर अपनी सुध बुध

महाश्चर्य्यप्रेमोज्वलरससदावेशविवशी
कृतांगास्तं गौरं कथमकृतपुन्यः प्रणयतु ॥ ४४ ॥
दत्वा यः कमपि प्रसादमथ संभाष्यस्मितश्रीमुखं
दूरात् स्निग्धदृशा निरीक्ष्य च महाप्रेमोत्सवं यच्छति ।
येषां हन्त ! कुतर्ककर्कषधिया तत्रापि नात्यादरः
साक्षात्पूर्णरसावतारिणि हरौ दुष्टा अमी केवलम् ॥ ४५ ॥

अथ दैन्यरूपस्व निन्दा ।

वञ्चितोऽस्मि बञ्चितोऽस्मि बञ्चितोस्मि न संशयः ।
विश्वं गौररसे मग्नं स्पर्शोऽपि मम नाभवत् ॥ ४६ ॥

भूल जाते हैं, और उन्हें (वक्रेश्वर आदि को) देखकर वैकुण्ठ निवासी भगवान के पार्षदगण रोमाञ्चित शरीर से—आश्चर्य्यान्वित होते हैं, उन श्री गौरचन्द्र को पापात्मा लोग किस प्रकार प्रेमी हो सकते हैं ॥ ४४ ॥

जो किसी अकथनीय मनुष्य को भी प्रसाद देकर मंद हास्य से सुशोभित श्री मुख से बार्तालाप, और मनोरम दृष्टि द्वारा दूर ही से देखकर उत्तम प्रेमानन्द देते हैं साक्षात् संपूर्ण प्रेमामृत प्रकाश करने वाले उनहीं श्री गौर चन्द्र को जो कुतर्क की दृष्टि से देख अधिक सत्कार नहीं करते वे ही दुष्टात्मा हैं ॥ ४५ ॥

श्री गौरांग प्रेम रस से संसार डूब गया पर मुझे स्पर्श पर्यन्त भी न हुआ, हाय ! मैं निःसन्देह ठगा गया ! ठगा गया !! ठगा गया !!! ॥ ४६ ॥

पृथ्वी मण्डल श्री गौरांग चरण धूल से स्पर्श होने पर परम पुरुषार्थ प्रेम अनायास ही किसने नहीं पाया ? बड़े दुःख की बात

कैर्वा सर्वपुमर्थमौलिरकृतायासैरिहासादितो
नासीद्गौरपदारविन्दरजसा स्पृष्टे महीमण्डले।
हा हा धिङ्-मम जीवनं धिगपि मे विद्या धिगप्याश्रमं
यद्दौर्भाग्यपरावरैर्मम न तत् सम्बन्धगन्धोऽप्यभूत् ॥ ४७॥
उत्सर्पं जगदेवपूरयन् गौरचन्द्रकरुणामहार्णवः।
विन्दूमात्रमपि नापतन्महादुर्भगे मयि किमेतदद्भुतम् ॥४८॥
कालः कलिर्बलिन इन्द्रियवैरिवर्गाः
श्रीभक्तिमार्ग इह कण्टककोटिरुद्धः।
हा हा क्व यामि विकलः किमहं करोमि
चैतन्यचन्द्र यदि नाद्य कृपां करोषि ॥ ४६ ॥
सोऽप्याश्चर्यमयःप्रभुर्नयनयो र्यन्नाभवेद्गोचरो
यन्नास्वादि हरेः पदाम्बुजरसस्तद्यद्गतं तद्गतम्।

है। मेरे जीवन, विद्या, और आश्रम को धिक्कार है क्योंकि दुर्भाग्य से मुझे प्रेम सम्बन्धी सुगन्धि भी न लगी ! ॥ ४७ ॥

कैसे आश्चर्य्य की बात है, श्री चैतन्य चन्द्रका करुणा रूपी बड़ा भारी समुद्र जगत को पूर्ण कर उच्छलित हुआ पर मैं ऐसा अभाग्य हूँ कि मुझ पर बिन्दु मात्र भी नहीं गिरा ॥ ४८ ॥

अधर्म प्रवर्तक कलि काल के प्रभाव से इन्द्रिय रूपी वैरी लोग बहुत बढ़ गये हैं। और भक्ति का मार्ग इस वक्त कर्म्म कांड ज्ञान कांड इत्यादिक करोड़ों कांटों से रुक । पड़ा है अतएव हे निमाई ? आज यदि तुम दया न करोगे तो इन सबसे घबड़ा कर हाय ! मैं कहाँ जाऊँगा ? क्या करूँगा ॥ ४६ ॥

अत्यन्त आश्चर्य्य मय वह प्रसिद्ध श्री कृष्ण चैतन्यचन्द्र मुझे नहीं दीखे, और न मुझसे उनके चरणारविन्दों का रस ही आस्वादित हुआ ! अस्तु जो गया सो गया इस वक्त प्रार्थना यह है कि श्री कृष्ण चैतन्य चन्द्र के चरण सरोजों में दत्तचित, भूमण्डल

एतावन्मम तावदस्तु जगतीं येऽन्येऽप्यलं कुर्व्वते
श्री चैतन्यपदे निखातमनसस्तैर्यत्प्रसङ्गोत्सव: ॥ ५० ॥
दुष्कर्मकोटिनिरतस्य दुरन्तघोर
दुर्वासनानिगड़शृंखलितस्य गाढ़ं ।
क्लिश्यन्मतेः कुमतिकोटिकदर्थितस्य
गौरं विनाद्य मम को भवितेह बन्धुः ॥ ५१ ॥
हा हन्त हन्त परमोषरचित्तभूमौ
व्यर्थीभवन्ति मम साधनकोटयोऽपि ।
सर्वात्मना तदहमद्भुतभक्तिबीजं
श्री गौरचन्द्रचरणं शरणं करोमि ॥ ५२ ॥
हा हन्त हन्त परमोषरचित्तभूमौ
सद्भक्तिकल्पलतिकाङ्कुरिता कथं स्यात् ।

के भूषण स्वरूप जो अन्य भक्त गण हैं उनके साथ मेरा सह बास हो ! ॥ ५० ॥

मैं महा पातकादिक उत्पन्न करने वाले करोड़ों कामों में निरत, अपार महा घोर दुर्वासना रूपी सङ्कलों से वद्ध दुःखों के बढ़ने से पराभव प्राप्त, और करोड़ों कुबुद्धि जनो से कदर्थित हूँ। अतएव इस कलियुग में श्री श्री गौर हरि के सिवाय दूसरा कौन मेरा वन्धु होगा ? अर्थात् श्री गौराङ्ग के सहाय विना इन दुर्गतियों से मेरा निस्तार नहीं है ॥ ५१ ॥

हाय ! हाय !! आज तक मैंने कुछ भी नहीं किया ; ऊषर (मरु) भूमि रूपी मेरे चित्त पर करोड़ों साधन व्यर्थ हो गये इस लिये मैं संपूर्ण इन्द्रियों से अद्भुत भक्ति के बीज स्वरूप श्री गौरचन्द्र के चरणों में शरण लेता हूँ ॥ ५२ ॥

हा ! परम ऊषर मेरी चित्त भूमि पर सद्भक्ति की कल्पलता

हृद्यैकमेव परमाश्वसनीयमस्ति
चैतन्यनामकलयन्न कदापि शोच्यः ॥ ५३ ॥
संसारदुःखजलधौ पतितस्य काम—
क्रोधादिनक्रमकरैः कवलीकृतस्य ।
दुर्वासनानिगड़ितस्य निराश्रयस्य
चैतन्यचन्द्र मम देहि पदावलम्बम् ॥ ५४ ॥
मृग्यापि सा शिवशुकोद्धवनारदाद्यै
राश्चर्यभक्तिपदवी न दवीयसी नः ।
दुर्बोधवैभवपते ! मयि पामरेऽपि
चैतन्यचन्द्र यदि ते करुणाकटाक्षः ॥ ५५ ॥
क्व सा निरङ्कुशकृपा क्व तद्वैभवमद्भुतम् ।
क्व सा वत्सलता शौरे गौरे यादृक् तवात्मनि ॥ ५६ ॥

कैसे अंकुरित हो सकती है ? पर "श्री चैतन्यचन्द्र का नामोच्चारण करने से ही मेरे हार्दिक दुःख विनाश हो जाते हैं" यही एक मेरे धैर्य का विषय है ॥ ५३ ॥

हे चैतन्यचन्द्र ! संसार के दुर्वासना जाल में फँसकर दुःख सागर में पड़े हुए, और काम क्रोधादि रूपी नक्र, मकर से ग्रसित, इस मुझ निराश्रित व्यक्ति को चरणावलम्बन दीजिये ५४ ॥

हेदुर्बोधवैभवेश ! हे चैतन्य महाप्रभो ! यदि मेरे समान पामरों पर भी जो आपकी करुणा दृष्टि पड़े तो शिव, शुक, उद्धव, नारद आदि से अन्वेषणीय अतीव अद्भुत भक्ति स्थान भी हम लोगों से दूर न रहे ॥ ५५

हे कृष्ण ! आपके गौर शरीर में जैसी अनिवार्य्य कृपा, विचित्र वैभव, और वत्सलता दीखती है वैसी और किसी शरीर में नहीं है अर्थात् कृष्ण आदिक अवतार में ऐसी कृपा आपने नहीं की थी ॥ ५६ ॥

अथोपास्यनिष्ठा ।

स्वतेजसा कृष्णपदारविन्दमहारसावेशितविश्वमीश्वरम् ।
कमप्यशेषश्रुतिगूढवेशं गौराङ्गमंगीकुरु मूढचेतः ॥ ५७ ॥

श्रवणमननसंकीर्त्यादिभक्त्या मुरारे
र्यदि परमपुमर्थं साधयेत्कोऽपि भद्रम् ।
मम तु परमपारप्रेमपीयूषसिंधोः
किमपि रसरहस्यं गौरधाम्नो नमस्यम् ॥ ५८ ॥

ईशं भजन्तु पुरुषार्थचतुष्टयाशा
दासाः भवन्तु च विहाय हरेरुपास्यान् ।
किञ्चिद्रहस्यपदलोभितधीरहन्तु-
चैतन्यचन्द्रचरणं शरणं करोमि ॥ ५९ ॥

अरे मूर्ख चित्त! जो अपने प्रभाव से अपने ही अन्य रूप श्री कृष्ण पद कमल के मकरंद से संसार को अनुरागी कर चुके हैं, और जिनमें असंख्य श्रुतियों से गूढ़ प्रवेश है, उन अनिर्वचनीय श्री गौरांग देव को ईश्वर रूप से मान ॥ ५७ ॥

यदि कोई मुरारी—भक्त श्रवण मननादि नव विधा भक्ति से 'परम पुरुषार्थ-प्रेम' साधन करें, तो भलेही करें, पर हमारे पक्ष में तो अपार प्रेमा--मृत सागर स्वरूप श्री गौरांग चन्द्र के भक्ति रस में जो अति गुप्त प्रेम-- वस्तु है वही आदर से भजन करने लायक है। अर्थात् मैं आदर से गौर भक्ति रस में ही लीन रहूँगा ॥ ५८ ॥

जो कोई मनुष्य, धर्म अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पदार्थों की इच्छा रखकर श्री कृष्ण को भजते हैं, या किसी दूसरे उपास्य की आराधना छोड़ कर श्री कृष्ण के दास होते हैं, पर मैं तो उस दुर्लभ श्री राधा कृष्ण के निगूढ़ रसा स्वादन

निष्ठां प्राप्ता व्यवहृतिततिर्लौकिकी वैदिकी वा
या वा लज्जा प्रहसनसमुद्गाननाट्योत्सवेषु ।
ये वाभूवन्नहह सहजप्राणदेहार्थधर्म्मा
गौरश्चौरः सकलमहरत् कोऽपि मे तीव्रवीर्य्यः ॥ ६० ॥
सान्द्रानन्दोज्ज्वलरसमयप्रेमपीयूषसिन्धोः
कोटिं वर्षन् किमपि करुणास्निग्धनेत्राञ्चलेन ।
कोऽयं देवः कनककदलीगर्भगौरांगयष्टि
श्चेतोऽकस्मान्मम निजपदे गाढ़युक्तं चकार ॥ ६१ ॥
स्वयं देवो यत्र द्रुतकनकगौरः करुणया
महाप्रेमानन्दोज्ज्वलरसवपुः प्रादुरभवत् ।
नवद्वीपे तस्मिन् प्रतिभवनभक्त्युत्सवमये
मनो मे वैकुण्ठादपि च मधुरे धाम्नि रमते ॥ ६२ ॥

के लिए लोभित होकर श्री चैतन्य चन्द्र के चरणों का आश्रय लेता हूँ ॥ ५६ ॥

बड़े बलवान किसी गौरांग चोर ने हमारी निष्ठा से उत्पन्न लौकिक वैदिक व्यवहार की श्रेणी, प्रहसन, ऊँचे स्वर से गाने--और नाचने आदि की लज्जा, प्राण, शरीर के कारण स्वरूप--धर्म--आदि सभी चीजों को चुरालिया ॥ ६० ॥

जिनका शरीर पीले कदली स्थम्भ के भीतरी भाग के तुल्य है, और जो करुणा से सींचे हुए नयन प्रान्त से अत्यन्त स्वच्छ रसमय प्रेम स्वरूप अमृतसिंधु की कोटि वरसाते हैं; ऐसे किसी अनिर्वचनीय देव ने अचानक हमारे चित्त को अपने चरणारविंदों में बलात् नियुक्त कर लिया ॥ ६१ ॥

जहाँ तपाए हुए सोने की सी गौर कान्ति वाले, अत्यन्त प्रेमानन्द और (श्री राधिका स्वरूप यक्त होने के हेतु) उज्वल

यत्तद्वदन्तु शास्त्राणि यत्तद्व्याख्यान्तु तार्किकाः ।
जीवनं मम चैतन्य-पादाम्भोजसुधैव तु ॥ ६३ ॥

पतन्ति यदि सिद्धयः करतले स्वयं दुर्लभाः
स्वयञ्च यदि सेवकीभवितुमागताः स्युः सुराः ।
किमन्यदिदमेव वा यदि चतुर्भुजं स्याद्वपु
स्तथापि मम नो मनाक् चलति गौरचंद्रान्मनः ॥ ६४ ॥

वासो मे वरमस्तु घोरदहनज्वालावलीपञ्जरे
श्री चैतन्यपदारविंदविमुखैर्मा कुत्रचित्संगमः ।
वैकुण्ठादिपदं स्वयञ्च मिलितं नो मे मनो लिप्सते
पादाम्भोजरजश्छटा यदि मनाक् गौरस्य नोरस्यते ॥ ६५ ॥

रस मय शरीर धारी स्वयं भगवान उत्पन्न हुए थे, और जहाँ घर घर में भक्ति का उत्सव व्याप्त है, उस वैकुण्ठ से भी ज्यादा मनोहर नवद्वीप धाम में हमारा चित्त घूमता है ॥ ६२ ॥

शास्त्रों को जो कहना हो,--कहे, एवं तार्किकगण भी इच्छानुसार व्याख्या करें पर मेरा जीवन स्वरूप तो गौरांग के चरणों का अमृतही है ॥ ६३ ॥

दुर्लभ सिद्धियां आपही यदि मेरे हस्तगत हों, या दास होने के लिए स्वयं देवतागण आवें, अधिक क्या ? यदि हमारा यह शरीर भी चतुर्भुज होजाय तथापि हमारा चित्त श्री गौरचन्द्र के चरणों से कदापि नहीं टलैगा ॥ ६४ ॥

भयानक अग्नि की शिखाएँ भी यदि हमारे देह में रहें तो भलेही रहें पर चैतन्य चरणारविंद से विमुख मनुष्यों का संग न हो, और यदि हमारा मन श्री गौरांग के चरणरज की शोभा का जरा भी आस्वाद कर सके तो स्वयं प्राप्त वैकुण्ठादि पद को भी नहीं चाँहता ॥ ६५ ॥

आस्तां नाम महान् महानिति रवं सर्वक्षमामण्डले
लोके वा प्रकटास्तु नाम महती सिद्धिश्चमत्कारिणी।
कामं चारु चतुर्भुजत्वमयतामाराध्य विश्वेश्वरं
चेतो मे बहु मन्यते नहि नहि श्रीगौरभक्तिंविना ॥ ६६॥
चैतन्येति दयामयेति परमोदारेति नानाविध
प्रेमावेशितर्वसभूतहृदयेत्याश्चर्यधामन्निति।
गौराङ्गेति गुणार्णवेति रसरूपेति स्वनामप्रिये
त्यश्रान्तं मम जल्पतो जनिरियं यायादिति प्रार्थये ॥ ६७॥
कदा शौरे गौरे वपुषि परमप्रेमरसदे
सदेकप्राणे निष्कपटकृतभावोस्मि भविता।
कदा वा तस्यालौकिकसदनुमानेन मम हृ
द्यकस्मात् श्रीराधापदनखमणिज्योतिरुदगात् ॥ ६८॥

समस्त पृथ्वी मण्डल में अत्यन्ताधिक ख्याति प्राप्ति हो, या आश्चर्य्य कारिणी बहुकालस्थायिनी सिद्धि लोक में प्रकट हो, या विष्णु की आराधना करके मनोहर चतुर्भुज स्वरूप प्राप्त हो, तो भी श्री गौर की भक्ति के बिना उसे मेरा मन तुच्छ ही समझता है ॥ ६६ ॥

हे चैतन्य ! हे दयामय ! हे परम उदार ! विविध प्रेम से सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में प्रवेश करने वाले, हे आश्चर्य धाम ! हे गौरांग ! हे गुणसागर ! हे रसरूप ! हे स्वनाम प्रिय ! इत्यादि नामों का कीर्तन करतेर ही हमारा जन्म बीते यही हमारी प्रार्थना है, बस और कुछ नही चाँहते ॥ ६७ ॥

हे कृष्ण ! प्रणयीजनो के प्रेम स्वरूप, अति उत्तम प्रेम रस देने वाले आपके गौर शरीर में हमारा अकपट प्रेम भाव कब तक होगा ? और कब मेरे हृदय में उस अलौकिक भाव के होने से

उद्दामदामनकदामगणाभिराम
मारामराममविरामगृहीतनाम ।
कारुण्यधाम कनकोज्ज्वलगौरधाम
चैतन्यनाम परमं कलयाम धाम ॥ ६९ ॥
सदा रङ्गे नीलाचलशिखरशृङ्गे विलसतो
हरेरेव श्राजन्मुखकमलभृङ्गेक्षणयुगं ।
समुत्तुङ्गप्रेमोन्मदरसतरङ्गं मृगदृशा
मनङ्गं गौराङ्गं स्मरतु गतसङ्गं मम मनः ॥ ७० ॥
अलंकारः पंकेरुहनयननिःस्यन्दिपयसां
स्पृधद्भिः सन्मुक्ताफलसुललितैर्यस्य वपुषि ।
उदञ्चद्रोमाञ्चैरपि च परमा यस्य सुषमा
तमालम्बे गौरं हरिमरुणरोचिष्णुवसनम् ॥ ७१ ॥
कन्दर्पादपि सुन्दरः सुरसरित्पूराद्हो पावनः

अनुमान द्वारा अचानक श्री राधिका के चरण नख मणियों की ज्योति उदय होगी ॥ ६८ ॥

जो खिले हुए दमनक (दोना) पुष्प की माला से शोभित हैं एवं मनुष्यो को आनन्द देने वाले हैं, निर्जन स्थान में स्मरण करने से सुख देने वाले हैं, और जो हर समय श्री कृष्ण नाम का उच्चारण करते हैं, करुणा निधान सुवर्ण की सी उज्वल जोति वाले उसी श्री चैतन्य नामक उत्तम ज्योति का ध्यान करता हूँ ॥ ६९ ॥

उत्सव पूर्ण नीलाचल शिखर के बिहारी, श्री हरि के मुख कमल में जिनके नयन भृंग से हुए हैं, जिनके हृदय में प्रेम रस की तरंग बह रही है, और जो मृगनयनी युवतियों की दृष्टि में साक्षात् मदन स्वरूप हैं, उनहीं परम वैराग्य सम्पन्न श्री गौरांग देव को हमारा मन स्मरण करै ॥ ७० ॥

गेरुआ वस्त्र, कमलोपम नयनों से निःसृत मनोरम मोती

शीतांशोरपि शीतलः सुमधुरो माध्वीकसारादपि ।
दाता कल्पमहीरुहादपि महास्निग्धो जनन्या अपि
प्रेम्णा गौरहरिः कदा नु हृदि मे ध्यातः पदं धास्यति ॥७२॥
पुञ्जं पुञ्जं मधुरमधुर प्रेममाध्वीरसानां
दत्वा दत्वा स्वयमुरुदयो मोदयन्विश्वमेतत् ।
एको देवः कटितटमिलन्मञ्जुमञ्जिष्ठवासा
भासा निर्भत्सितनवतड़ित्कोटिरेव प्रियो मे ॥ ७३ ॥
कान्त्या निन्दितकोटिकोटिमदनः श्रीमन्मुखेन्दुच्छटा
विच्छायीकृतकोटिकोटिशरदुन्मीलत्तुषारच्छविः ।
औदार्येण च कोटिकोटिगुणितं कल्पद्रुमं ह्यल्पयन्
गौरो मे हृदि कोटिकोटिजनुषां भाग्यैः पदं धास्यति ॥७४॥
क्षणं क्षीणः पीनः क्षणमहह साश्रुः क्षणमथ
क्षणं स्मेरः भीतः क्षणमनलतप्तः क्षणमपि ।

सा अश्रुविन्दु, और उद्गत रोमाञ्च ही जिनके देह का भूषण की शोभा बढ़ा रहा है, मैं उनही श्री गौर हरि की हृदय में चिन्ता करूं ॥ ७१ ॥

जो कामदेव से भी सुन्दर, गंगा प्रवाह से भी पवित्र, चन्द्र से भी शीतल, अमृत से भी मीठे, कल्पवृक्ष से भी अधिक दानी, और मा से ज्यादा प्यार करने वाले हैं, वे श्री चैतन्य चिन्तित हो, प्रेम से कब हमारे हृदय मन्दिर में आगमन करेंगे ॥ ७२ ॥

जो आपही अति मीठी से भी मीठी प्रेमलता के समुद्र को दे दे कर इस विश्व को सुखी करने के लिए उदय हुए हैं, कमर में मनोहर लाल वस्त्र धारण किये हैं, और अपनी कान्ति से नवीन विद्युत् पङ्क्ति को तिरस्कृत किए हुए हैं, वही परम दयालु असाधारण देव मुझ पर प्रसन्न हो ॥ ७३ ॥

जिनकी मनो मोहक रूप की सुन्दरता से करोड़ों कामदेव

क्षणं धावन् स्तब्धः क्षणमधिकजल्पन् क्षणमहो
क्षणं मूको गौरः स्फुरतु मम देहो भगवतः ॥ ७५ ॥
पात्रापात्रविचारणां न कुरुते न स्वं परं वीक्ष्यते
देयादेयविमर्शको नहि न वा कालप्रतीक्षः प्रभुः ।
सद्यो यः श्रवणेक्षणप्रणमनध्यानादिना दुर्लभं
दत्ते भक्तिरसं स एव भगवान् गौरः परं मे गतिः ॥ ७६ ॥
पापीयानपि हीनजातिरपि दुःशीलोऽपि दुष्कर्म्मणां
सीमापि श्वपचाधमोऽपि सततं दुर्वासनाढ्योऽपि च ।
दुर्देशप्रभवोऽपि तत्र विहितावासोऽपि दुःसङ्गतो
नष्टोऽप्युद्धृत एव येन कृपया तं गौरमेवाश्रये ॥ ७७ ॥

भी निन्दनीय हैं जिनके मुख की कान्ति से करोड़ों शरच्चन्द्र भी मलिन है, जिनकी उदारता से करोड़ों कल्प वृक्ष का भी गर्व खर्व है, वे श्री गौर चन्द्र करोड़ों जन्मोपार्जित पुण्य द्वारा भी क्या हमारे हृदय में आएँगे ॥ ७४ ॥

कभी क्षीण, कभी स्थूल, कभी आनन्दाश्रुपूर्ण, कभी हास्य-मुख, कभी शीतल, कभी ऊष्ण, कभी धावमान, कभी स्तम्भित, कभी वहु भाषी, कभी मौनावलम्वी इन भावों को क्षण२ में धारण करने वाले श्रीगौराङ्ग हमारे हृदय में स्फुरित हों ॥ ७५ ॥

जो पात्र अपात्र का विचार, अपनी और पराई दृष्टि, देय अदेय का विचार, और समय असमय की प्रतीक्षा कुछ भी न करके श्रवण, दर्शन, प्रणाम, ध्यान आदिसे दुर्लभ भक्ति रसको क्षण मात्र में प्रदान करते हैं, वही गौर हरि हमारी गति हैं, दूसरे नहीं ! ॥ ७६ ॥

पापी, नीच, दुरात्मा, असत् कार्य्य करने वाले चाण्डाल, सदा दुष्ट इच्छा करने वाले, अधम देशवासी, कुसङ्गी आदि सकल

कलिन्दतनयातटे स्फुरदमन्दवृन्दावनं
विहाय लवणाम्बुधेः पुलिनपुष्पवाटीं गतः ।
धृतारुणपटः परीहृतसुपीतबासा हरि
स्तिरोहितनिजच्छविः प्रकटगौरिमा मे गतिः ॥ ७८ ॥

अथ लोकशिक्षा ।

अरे मूढ़ा गूढ़ां विचिनुत हरेर्भक्तिपदवीं
दवीयस्या दृष्ट्वाप्यपरिचितपूर्वां मुनिबरैः ।
न विश्रम्भश्चित्ते यदि यदि च दौर्लभ्यमिव तत्
परित्यज्याशेषं ब्रजत शरणं गौरचरणम् ॥ ७९ ॥
दधन्मूर्द्ध न्यूर्द्ध मुकुलितकराम्भोजयुगलं
गलन्नेत्राम्भोभिः स्नपितमृदुगण्डस्थलयुगं ।

नष्ट मनुष्यों को जिन्होंने दयाकर उद्धार किया है, उन्हीं श्री गौर हरि का मैं आश्रय लेता हूँ ॥ ७७ ॥

जिन्होंने यमुना के तीर स्थित रमणीय श्री बृन्दावन को छोड़कर लवण सागर के किनारे वाली पुण्य बाटिकाओं में गमन किया है, जिन्होंने पीताम्बर को त्याग कर गेरुआ वस्त्र धारण किया है, और जिन्होंने अपनी इन्द्र नीलमणि को तिरस्कृत करने वाली कान्ति को छोड़ कर गौरअंग धारण किया है, वही गौर हरि हमारी गति हैं ॥ ७८ ॥

अरे मूर्खो। अति गुप्त और दूरवर्ती, दृष्ट होने पर भी श्रेष्ट मुनियों से पहिले अपरिचित हरि का जो भक्तिमार्ग है, उसे तुम लोग खोजो ! और यदि " वह दुर्लभ वस्तु है हमें कैसे मिलेगी" ? ऐसा यदि विश्वास न हो तो सब त्याग कर, श्री गौर चंद्र के चरण का आश्रय लो ! ॥ ७९ ॥

जो दोनों हाथों की अञ्जलि बंद कर शिरपर धरे हैं और

दुकूलेनावीतं नवकमलकिञ्जल्करुचिना
परं ज्योतिर्गौरं कनकरुचिचौरं प्रणमत ॥ ८० ॥

भ्रातः कीर्तय नाम गोकुलपतेरुद्दामनामावलीं
यद्वा भावय तस्य दिव्यमधुरं रूपं जगन्मंगलं ।
हन्त प्रेममहारसोज्ज्वलपदे नाशापि ते सम्भवेत्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्यदि कृपादृष्टिः पतेन्न त्वयि ॥ ८१ ॥

अये न कुरु साहसं तव हसंति सर्वोद्यमं
जनाः परित उन्मदा हरिरसामृतास्वादिनः ।
इदंतु निभृतं शृणु प्रणयवस्तु प्रस्तूयते
यदेव निगमेषु तत्पतिरयं हि गौरः परम् ॥ ८२ ॥

निकलते हुए आंसुओं से गालों को भिगो रहे हैं, और नवीन कमलों के केशर समान रङ्ग वाला लाल वस्त्र धारण किये हैं, उन्हीं परम ज्योति सुवर्ण वर्ण हारी गौर हरि को प्रणाम करो ॥ ८० ॥

भाई ! चाहे तुम नन्द सुत श्री कृष्णचंद्र की प्रभाव शालिनी नामावली गान करो, या उनकी कल्याण देने वाली मधुर मूर्ति का ध्यान करो, किन्तु जब तक श्री कृष्णचैतन्यचंद्र की कृपा दृष्टि तुम पर न होगी, तब तक उज्वल महा प्रेम रस के पाने की आशा भी असंभव है ॥ ८१ ॥

भाई ! चैतन्य पदाश्रय के बिना, अज्ञानता से और दूसरे साधनों में अचानक मत लगो । क्यों कि सर्वतो भाव से हरि रसामृत चाखने वाले श्री चैतन्य भक्त गण तुम्हारा प्रयास देखकर हँसेंगे, इस समय एक गुप्त बात कहते हैं, सुनों,–"बेदादिक में जो वस्तु प्रेम--सार, रूप मे कही गई है उसके मालिक केवल गौरांग देव ही हैं ॥ ८२ ॥

ज्ञानादिवर्त्मविरुचिं व्रजनाथभक्ति
रीतिं न वेद्मि न च सद्गुरवो मिलंति ।
हा हन्त हन्त मम कः शरणं विमूढ़
गौरोहरिस्तव न कर्णपथं गतोऽस्ति ॥ ८३ ॥
वृथावेशं कर्मस्वपनयत वार्तामपि मनाक्
न कर्णाभ्यर्णेऽपि क्वचन नयताध्यात्मसरणेः ।
न मोह देहादौ भजत परमाश्चर्यमधुरः
पुमर्थानाम्मौलिर्मिलति भवतां गौरकृपया ॥ ८४ ॥
अलं शास्त्राभ्यासैरलमहह तीर्थाटनिकया
सदा योषिद्व्याघ्रीस्त्रसत वितथां थूत्कुरु दिवम् ।
तृणन्मन्या धन्याः श्रयत किल सन्न्यासिकपटं
नटन्तं गौरांगं निजरसमदादम्बुधितटे ॥ ८५ ॥

"ज्ञानादि मार्ग में घृणा पैदा करने वाली श्री हरिभक्ति रीति मैं नहीं जानता, न उसे बताने वाले अच्छे गुरु मिलते हैं, हाय, हाय, ! मुझे शरण देने वाला कौन है ? " ऐसा विचारने वाला मूर्ख ! क्या तुमने श्री गौर हरि का नाम नहीं सुना ? अर्थात श्री गौर हरि को अपना आश्रय समझो, वेही तुम्हें निगूढ़ हरि--भक्ति मार्ग बताएँगे ॥ ८३ ॥

नित्य नैमित्तिक कृत्यों में वृथा अभिरुचि छोड़ो, आत्मानात्म विचार कथा को कान के पास तनक भी मत आने दो, शरीर का भी मोह त्यागो, तो श्री गौरांग की कृपा से अद्भुत, मनोहर सम्पूर्ण पुरुषार्थों का मूल प्रेम तुमको प्राप्त होगा ॥ ८४ ॥

शास्त्राभ्यास कर योगादि साधन की या तीर्थाटनादि की जरूरत नहीं है, व्याघ्री सी स्त्री से सदा भय करो, स्वर्ग को तृण जानकर थूक दो । जो छलसे सन्यासी वेश में अपनी

किं तावद्व्रत दुर्गमेषु विफलं योगादिमार्गेष्वहो
भक्तिं कृष्णपदाम्बुजे विदधतः सर्वार्थमालुण्ठत।
आशा प्रेममहोत्सवे यदि शिवब्रह्माद्यलभ्येऽद्भुते
गौरे धामनि दुर्विगाहमहिमोदारे तदा रज्यताम् ॥ ८६ ॥

यथा यथा गौरपदारविंदे विंदेत भक्तिं कृतपुण्यराशिः।
तथा तथोत्सर्पति हृदयकस्माद्राधापदाम्भोजसुधाम्बुराशिः ॥

अपारस्य प्रेमोज्ज्वलरसरहस्यामृतनिधे
निधानं ब्रह्मेशार्चित इह हि चैतन्यचरणः।
अतस्तं ध्यायन्तः प्रणयभरतो यान्तु शरणं
तमेव प्रोन्मत्तास्तमिमह किल गायन्तु कृतिनः ॥ ८८ ॥

अन्य मूर्ति कृष्ण के प्रेमानंद में मग्न हैं और सागर तट पर नाच रहे हैं उनहीं श्री गौर चंद्र का आश्रय लो ॥ ८५ ॥

भाई ! योग का रास्ता तो बड़ा बीहड़ है, इससे उसे खोजने का बृथा परिश्रम न कर, तुम लोग श्री कृष्ण चरणाम्बुज में भक्ति कर बल पूर्वक प्रेमधन ले लो ! और शिवादि को भी दुष्प्राप्य महा विचित्र प्रेम रस के लिए यदि तुम लोगों की इच्छा हो तो उनहीं परम उदार, दुर्बोध महिमा, श्रीगौरहरि पर अनुरक्त होवो ॥ ८६ ॥

पुण्यात्मागण गौर पद में जैसे ही भक्ति पावेंगे वैसे ही श्रीराधिकाचरणाम्बुज सम्बधीय प्रेम सुधा अचानक उन के हृदय में उसी भाव से उदय होगी ॥ ८७ ॥

हे सार ग्राही गण ! इस कलियुग में प्रेम से तुम लोग जो अगाध, प्रेमोज्वल सुधा सागर के आधार, और शिव ब्रह्मा आदि से भी पूजित हैं, उन्हीं श्री गौरचन्द्र के चरणों का आश्रय लो। और अत्यंत उन्मत्त हो उनका ही गान, ध्यान करो॥ ८८ ॥

दन्ते निधाय तृणकं पदयोर्निपत्य
कृत्वा च काकुशतमेतदहं ब्रवीमि।
हे साधवः सकलमेव विहाय दूरा
द्गौराङ्गचन्द्रचरणे कुरुतानुरागम् ॥ ८९ ॥

अहो न दुर्लभा मुक्तिर्न च भक्तिः सुदुर्लभा।
गौरचन्द्रप्रसादस्तु वैकुण्ठेऽपि सुदुर्लभम् ॥ ९० ॥

भजन्तु चैतन्यपदारविन्दं भवन्तु सद्भक्तिरसेन पूर्णाः।
आनन्दयन्तु त्रिजगद्विचित्रं माधुर्यसौभाग्यदयाश्रमाद्यैः ॥ ९१

संसारसिन्धुतरणे हृदयं यदि स्यात्
सङ्कीर्तनामृतरसे रमते मनश्चेत्।
प्रेमाम्बुधौ विहरणे यदि चित्तवृत्ति
श्चैतन्यचन्द्रचरणे शरणं प्रयातु ॥ ९२ ॥

मैं दाँतों में तृण ले, तुम्हारे पावों पर गिरकर नम्रता से यही प्रार्थना करता हूँ कि—"तुम लोग सम्पूर्ण धर्म्मों को छोड़ श्रीगौराङ्ग चरण का आश्रय लो" ! ॥ ८९ ॥

न तो मुक्ति दुर्लभ है और न भक्ति। केवल गौरचन्द्र की प्रसन्नता बैकुण्ठ में भी अति दुर्लभ है। क्यों कि, वहां के निवासी भी गौर प्रसाद के लिए तरसते हैं ॥ ९० ॥

तुम लोग श्रीचैतन्य पदारविन्दों का आश्रय लो ! और उत्तम भक्ति रससे पूर्ण हो जाओ। एवं माधुर्य्य, सौभाग्य कारुण्य, सहि-ष्णुतादि रसों द्वारा विचित्र भाव से संसार को सुखी करो ॥ ९१ ॥

संसार सागर के पार जाने की यदि इच्छा हो, संकीर्तन रूपी अमृतोपम रसपान में यदि मन लगता हो, या प्रेम सागर में विहार करने की इच्छा हो, तो श्रीचैतन्यचंद्र के चरणों में आ-श्रय लो ॥ ९२ ॥

ज्ञानवैराग्यभक्त्यादि साधयन्तु यथा तथा ।
चैतन्यचरणाम्भोजभक्तिलाभसमं कुतः ? ॥ ६३ ॥
अचैतन्यमिदं विश्वं यदि चैतन्यमीश्वरम् ।
न भजेत्सर्वतो मृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ॥ ६४ ॥
आशा यस्य पदद्वन्द्वे चैतन्यस्य महाप्रभोः ।
तस्येन्द्रो दासवद्भाति का कथा नृपकीटके ॥ ६५ ॥
यस्याशा कृष्णचैतन्ये नृपद्वारि किमर्थिनः ।
चिन्तामणिमयं प्राप्य को मूढो रजतं व्रजेत् ॥ ६६ ॥
ध्यायन्तो गिरिकन्दरेषु वहवो ब्रह्मानुभूयासते
योगाभ्यासपराश्च सन्ति वहवः सिद्धा महीमण्डले ।

चाहे किसी प्रकार से ज्ञान, वैराग्य, भक्ति का साधन करो, पर याद रक्खो, श्रीगौर पद कमल की भक्ति से जो ज्ञान वैराग्यादिक प्राप्त होते हैं, उनकी बराबर वे न होंगें ॥ ६३ ॥

इस अचैतन्य (जड) जगत् में देवों से पूजित श्रीचैतन्य का भजन न किया जाय तो सब मृतवत् हैं। सारांश यह है कि चैतन्य की यदि भक्ति नहीं, तो सब अचैतन्य ही हैं ॥ ६४ ॥

महाप्रभु श्री चैतन्यदेव के चरणों में जिसकी आशा है, उसके इन्द्रादि देव भी दास सा हैं और नृपतियों की तो बात ही क्या है ॥ ९५ ॥

जिस को श्रीकृष्णचैतन्यदेव के पाने की इच्छा है, उसे राजा के दरवाजे से क्या मतलब ? अजी ! चिंतामणि को पाकर क्या कोई मूर्ख चांदी पाने की इच्छा करता है ॥ ६६ ॥

कोई पर्वत कंदरा में ब्रह्म चिंता करते हैं, कोई योगाभ्यास में ही मग्न हैं, बहुतेरे सिद्ध संसार में घूम रहे हैं, कोई कोई विद्या, धन, ऐश्वर्य, आदि से मत्त हो, व्यर्थ बकवाद में मस्त हैं, किंतु

विद्याशौर्यधनादिभिश्च वहवो जल्पन्ति मिथोद्धताः ।
को वा गौरकृपां विनाद्य जगति प्रमोन्मदो नृत्यति ? ॥६७॥
काशीवासीनपि न गणये किं गयां मार्गयामो
मुक्तिः शुक्तीभवति यदि मे कः परार्थप्रसङ्गः ।
त्रासाभासः स्फुरति न महारौरवेऽपि क्व भीतिः
स्त्रीपुत्रादौ यदि कृपयते देवदेवः स गौरः ॥ ६८ ॥

अथ श्रीचैतन्योत्कर्षता ।

मत्तकेशरिकिशोरविक्रमः प्रेमसिंधुजगदाल्पवोद्यमः ।
कोऽपि दिव्यनवहेमकंदली कोमलो जयति गौरचंद्रमाः ॥९९॥
सौन्दर्ये कामकोटिः सकलजनसमाह्लादने चंद्रकोटि-
र्वात्सल्ये मातृकोटिस्त्रिदशविटपिनां कोटिरौदार्यसारे।

गौर हरि की कृपा के बिना संसार में कौन प्रेम मद से मत्त होकर नाचना है ॥ ६७ ॥

यदि परमात्मा श्री गौर हरि प्रसन्न हों, तो काशी वासियों को भी कुछ नहीं समझूंगा और गया धर्म की ही खोज क्यों करूंगा ! जब कि मेरे लिए मुक्ति भी तुच्छ है, तो दूसरी बातों का कहना ही क्या ! और यदि महारौरव नरक से डर का संदेह भी नहीं है, तो स्त्री पुत्रादिकों से भय क्या ॥ ६८ ॥

मत्तसिंह के समान विक्रमशाली, सुवर्ण के नवीन अङ्कुर समान, सुकुमार प्रेमसागर में जगत् को डुबा देने को उद्यत गौर-चंद्रमा बिराजमान हैं ॥ ६९ ॥

जो करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर, करोड़ों चन्द्रमा के समान संसार को आनन्द देने वाले, करोड़ों माताओं के समान स्नेही, करोड़ों कल्पवृक्ष के सदृश दाता, करोड़ों सागर की भांति गम्भीर,

गाम्भीर्य्येऽम्भोधिकोटिर्मधुरिमणि सुधाक्षीरमाध्वीककोटि
गौरांदेवः सजीयात् प्रणयरसपदे दर्शिनाश्चर्य्यकोटिः॥१००॥
स्वपादाम्भोजैकप्रणयलहरीसाधनभृतां
शिवब्रह्मादीनामपि च सुमहाविस्मयभृतां
महाप्रेमावेशात् किमपि नटतामुन्मद इव
प्रभुर्गौरो जीयात् प्रकटपरमाश्चर्यमहिमा ॥ १०१ ॥
माद्यत् कोटिमृगेन्द्रहुङ्कृति रचस्तिग्मांशुकोटिच्छविः
कोटीन्दूद्भटशीतलो गतिजितप्रोन्मत्तकोटिद्विपः ।
नाम्ना दुर्गतकोटिनिष्कृतिकरो ब्रह्मादिकोटीश्वरः
कोट्यद्वैतशिरोमणिर्विजयते श्रीश्रीशचीनन्दनः ॥ १०२ ॥
यो मार्गो दूरशून्यो बत इह बलवत् कण्टको योऽतिदुर्गो
मिथ्यार्थभ्रामको यः सपदि रसमयानन्दनिःस्यन्दको यः ।

अमृत से भी मीठे और करोड़ों विचित्र प्रेम रस को दिखाने वाले हैं, वे श्री चैतन्यदेव जययुक्त हों ॥ १०० ॥

अपने चरणों के प्रेम तरङ्ग धारी–शिव ब्रह्मा को भी अति विस्मय देने वाले, प्रेमावेश में पागल की भाँति नाचने वाले भक्त के सम्बंध में अति आश्चर्य महिमा प्रकाश करने वाले सर्वेश्वर श्री चैतन्यदेव सर्वोत्कर्ष रूप से विराजमान हों ॥ १०१

जिनको--मत्तसिंह के समान हुङ्कार है, करोड़ों चंद्रमा की सी शीतलता है, करोड़ों मत्त हस्ती से भी अधिक सुंदर जिनका गमन है, जो नाम से ही करोड़ों पापियों को उद्धार करने वाले हैं, जो कोटि २ ब्रह्मादिकों के ईश्वर हैं और करोड़ों अद्वैतवादियों के शिरोमणि हैं, वे श्री गौरहरि जय युक्त हों ॥ १०२ ॥

दूरके और सुनसान, तथा सूखे ज्ञान नित्यनैमित्तिक कर्म्म रूपी काँटों से आच्छादित, और मिथ्या विषय–भ्रम--उत्पन्न करने वाले मार्ग को रसमय, और आनंदमय करने के लिए तथा हृदय गह्वर

सद्यः प्रद्योतयंस्तं प्रकटित महिमा स्नेहवान् हृद्गुहायाः
कोऽप्यन्तर्ध्वान्तहन्ता स जयति नवद्वीपदीप्यत्प्रदीपः ॥१०३॥
दूरादेव दहन् कुतर्कशलभान् कोटिन्दुसंशीतलो
ज्योतिः कन्दलसद्मसन्मधुरिमा बाह्यान्तरध्वान्तहृत् ।
सस्नेहाशयवर्तिदिव्यविसरत्तेजाः सुवर्णद्युतिः
कारुण्यादिह जाज्वलीति स नवद्वीपप्रदीपोऽद्भुतः ॥१०४॥
चीत्कारैर्दशदिङ् मुखं मुखरयन्नट्टहासच्छटा
वीचीभिः स्फुटकुंदकैरवगणप्रोद्भासिकुर्वन्नभः ।
सर्व्वाङ्गं पवनोच्चलच्चलदलप्रायप्रकम्पं दध
न्मत्तः प्रेमरसोन्मदाप्लुतगतिर्गौरोहरिः शोभते ॥ १०५॥
निर्दोषश्चारुनृत्यो विधुत मलिनता वक्रभावः कदाचि-
न्निःशेषप्राणितापत्रयहरणमहाप्रेमपीयूषवर्षी ।

का अंधकार मिटाने वाले, स्नेहमय, नवद्वीप के उज्वलदीपस्वरूप अत्यंत पराक्रमी श्री गौर हरि की जय हो ॥ १०३ ॥

दूरही से कुतर्क रूपी कीड़ों को नाश करने वाले, करोड़ों चन्द्र से भी विशेष शीतल, ज्योति समूह के आगार बड़े मधुर बाहर भीतर के अन्धकार को नाश करने वाले, सस्नेह अन्तःकरण रूपी बत्ती से प्रज्वलित, सुवर्णाभ श्री गौरचन्द्र करुणा वश इसी भाँति विचित्र-प्रदीप स्वरूप श्री नवद्वीप में प्रकाशमान हैं ॥१०४॥

चीत्कारध्वनि से दशों दिशाओं को गुँजाते हुए, अट्टहास्य की शोभा लहरियों से विकसित कुन्द, कुमुदरेखा सदृश दन्त पङ्क्तियों से आकाश को प्रकाशित करते हुए, पवन प्रकम्पित पत्र के समान कम्पित शरीर, प्रेम मद से उन्मत्त, श्री गौरचन्द्र प्रफुल्लित गतिद्वारा शोभा पारहे हैं ॥ १०५ ॥

रात्रि की अपेक्षा-- विरहित, निष्कलङ्क वक्र भाव शून्य, सब के तापत्रय हरनें को प्रेम वर्षाने वाले, और भक्तों के चित्त

उद्भूतः कोऽपि भाग्योदयरुचिरशचीगर्भदुग्धाम्बुराशे
र्भक्तानां हृच्चकोरस्वादितपदरुचिर्भाति गौराङ्गचन्द्रः ॥१०६॥
सिञ्चन् सिञ्चन्नयन पयसा पाण्डुगण्डस्थलान्तं
मुञ्चन् मुञ्चन् प्रतिमुहुरहो दीर्घनिःश्वासजातम् ।
उच्चैः क्रन्दन् करुणकरुणोद्गीर्णहाहेति रावो
गौरः कोऽपि व्रजविरहिणीभावमग्नश्चकास्ति ॥ १०७ ॥
बिभ्रद्वर्णं किमपि दहनोत्तीर्णसौवर्णसारं
दिव्याकारं किमपि कलयन् दृप्तगोपालबालः
आविष्कुर्वन् कचिदवसरे तत्तदाश्चर्य्यलीलां
साक्षाद्राधामधुरिपुवपुर्भाति गौरांगचन्द्रः ॥ १०८ ॥

अथावतारमहिमा ।

अकस्मादेवाभिर्भवति भगवन्नामलहरी
परीतानां पापैरपि पुरुभिरेषां तनुभृतां ।

चकोर जिनके चरणों की मधुरता आस्वादन करते हैं, वे अद्भुत श्री गौरचन्द्र शचीगर्भ रूपी क्षीर सागर से उत्पन्न हो प्रकाशित हैं ॥ १०६ ॥

जो श्री राधा के महाभावामृत सागर में मग्न हो आँसुओं से पीतवर्ण गालों के प्रान्त भाग को सींचते हैं, वार वार दीर्घ निश्वास त्याग करते हैं, और करुणा युक्त हा ! हा ! शब्द में बड़े जोर से क्रन्दन करते हैं, ऐसे कोई गौर हरि सर्वोत्कर्ष रूप से विराजमान हैं ॥ १०७ ॥

सुवर्ण वर्ण, परम सुन्दर आकृति श्री गौरचन्द्र, गोपाल की बाल्य लीला प्रकाश कर श्री राधा माधव के एकी भूत विग्रह स्वरूप परम शोभा से शोभित हो बिराजमान हैं ॥ १०८ ॥

अहा ! जिनके संसार में अवतीर्ण होने से बड़े २ पापी

अहो बज्रप्रायं हृदपि नवनीतायितमभू
न्नृणां लोके यस्मिन्नवतरति स गौरो मम गतिः ॥१०९॥
न योगो न ध्यानं न च जपतपस्त्यागनियमा
न वेदानाचारः क नु वत निषिद्धाद्य परतिः।
अकस्माच्चैतन्येऽवतरति दयासारहृदये
पुमर्थानां मौलिं परमिह मुदा लुण्ठति जनः॥ ११० ॥
महाकर्मश्रोते निपतितमपि स्थैर्यमयते
महापाषाणेभ्योऽप्यतिकठिनमेति द्रवदशाम् ।
नटत्यूर्द्ध निःसाधनमपि महायोगिमनसां
भुवि श्री चैतन्येऽवतरति मनश्चित्रविभवे ॥ १११ ॥

मनुष्यों के सम्बन्ध में स्वयं भगवान श्री कृष्ण की नाम लहरी प्रकाशित हुई है, और पापियों का बज्र सा कड़ा हृदय भी माखन की भांति स्नेह से कोमल हुआ है, वही श्री गौरांग मेरे गति हैं ॥ १०९ ॥

अचानक सदय हृदय श्री चैतन्य देव के अवतीर्ण होने पर जिन लोगों में योग, ध्यान, जप, तप, दान, व्रत, वेद, नियम और सदाचार आदि कुछ न था, (पाप कार्य्य से निवृत्ति की कथा भी न थी और क्या कहूँ) उन सबने भी इस संसार में आनंदित चित्त से परम पुरुषार्थों में शिरोमणि प्रेमधन प्राप्त किया है आश्चर्य्य यह है कि, ऐसी प्रेम--प्राप्ति और किसी अवतार में नहीं हुई थी ॥ ११० ॥

भूमण्डल में श्री चैतन्य देव के उत्पन्न होने से-कर्म्म काण्डियों का मन कर्म्मश्रोत में निपतित होकर भी स्थिरता को प्राप्त हुआ है, महापाषाण हृदय भी प्रेम से गल गया है, और योगियों का मन भी योग से हट कर प्रेम से प्रफुल्लित हो रहा है ॥ १११ ॥

स्त्रीपुत्रादिकथां जहुर्विषयिणः शास्त्रप्रवादं बुधा
योगीन्द्रा विजहुर्मरुन्नियमजक्लेशं तपस्तापसाः ।
ज्ञानाभ्यासविधिं जहुश्च यतयश्चैतन्यचंद्रे परा
माविष्कुर्वति भक्तियोगपदवीं नैवान्य आसीद्रसः ॥ ११२ ॥
अभूद्गेह गेहे तुमुलहरिसंकीर्तनरवो
बभौ देहे देहे विपुलपुलकाश्रुव्यतिकरः ।
अपि स्नेहे स्नेहे परममधुरोत्कर्षपदवी
दवीयस्याम्नायादपि जगति गौरेऽवतरति ॥ ११३ ॥
अकस्मादेवैतद्भुवनमभितः प्लावितमभूत्
महाप्रेमाम्भोधेः किमपि रसवन्याभिरखिलम् ।

श्री चैतन्य चंद्र के निगूढ़ रागानुगीय मार्ग के प्रकाश करने पर कोई भी रस देखने में नहीं आता क्योंकि, विषयासक्तों ने स्त्री पुत्रों की बात, पण्डितों ने शास्त्र चर्चा, योगियों ने प्राणायाम से उत्थित वायु को बश रखने का दुःख, तपस्वियों ने तपस्या का दुःख (स्वीकार) और यतियों ने ज्ञानाभ्यास (ब्रह्म अनुसंधान) आदि छोड़ दिया है ॥ ११२ ॥

इस लोक में गौरहरि के अवतार होने से सबरे गृह संकीर्तन शब्द से पूर्ण, सम्पूर्ण शरीर प्रेमाश्रुओं से तथा रोमाञ्चों से सुशोभित हो गये हैं, और वेद से भी वह अज्ञात अत्यंत मधुर प्रेम पथ प्रकाशित हुआ है ॥ ११३ ॥

सबको आकर्षण करने वाले चिदानंदमय स्वयं भगवान् श्री कृष्ण ने श्री राधा का भाव स्वीकार कर गौर शरीर से अवतीर्ण होने पर सब संसार प्रेम समुद्र के रसोछ्वास से अचानक प्लावित हुआ है, अदृष्ट, अश्रुत प्रेम विकास से संसार एक बारही चमत्कृत हुआ है ॥ ११४ ॥

अकस्माच्चाहृष्टाश्रुतचरविकारैरलमभूत
चमत्कारः कृष्णे कनकरुचिरांगेऽवतरति ॥ ११४ ॥
उद्गृह्णन्ति समस्तशास्त्रमभितो दुर्वारगर्वायिता
धन्यन्मन्यधियश्च कर्मतपसाद्युद्यायचेषु स्थिताः
द्वित्र्याण्येव जपन्ति केचन हरेर्नामानि वामाशयाः
पूर्वं सम्प्रति गौर चंद्र उदिते प्रेमापि साधारणः ॥११५॥
देवे चैतन्यनाम्न्ययवतरति सुरप्रार्थ्यपादाब्जसेवे
विश्वद्रीचीः प्रविस्तारयति सुमधुरप्रेमपीयूषवीचीः
को बालः कश्च वृद्धः क इह जड़मतिः का वधूः कोवराकः
सर्वेषामैकरस्यं किमपि हरिपदे भक्तिभाजां वभूव ॥११६॥
सर्वे शंकरनारदादय इहायाता स्वयं श्रीरपि
प्राप्ता देवहलायुधोपि मिलितो जाताश्च ते वृष्णयः

शास्त्रज्ञान से गर्वित, अपने को धन्य मानने वाले, स्मृति कथित "नित्य नैमित्तिक" कार्य तत्पर व्यक्तियों में भी कभी कोई २--३ बार 'हरेकृष्ण' इत्यादि नाम उच्चारण करते थे, किन्तु कृष्ण नाम लेने पर भी उनका चित्त कुटिल ही था किन्तु सम्प्रति श्री गौरांग के प्रकाशित होने से प्रेम साधारण होगया अर्थात् पहिले ज्ञानियों को भी जो नहीं प्राप्त था उसी को अब नीच मनुष्यगण भी दिन रात (हरे कृष्ण २) सरल चित्त से जपते हैं ॥ ११५ ॥

देवतागण भी जिनके चरणों की सेवा करना चाहते हैं, उनहीं श्री चैतन्यदेव के उदित होने पर संसार व्याप्त मधुर प्रेम सुधा की तरंग फैली हुई है, उससे क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या मूर्ख, क्या स्त्री, क्या दुष्ट, सभी श्री हरि भक्ति के पात्र हो, प्रेम रस के रसिक हुए हैं ॥ ११६ ॥

भूय: किं ब्रजवासिनोपि प्रकटा गोपाल गोप्यादय:
पूर्णे प्रेमरसेश्वरेऽवतरति श्रीगौरचंद्रे भुवि ॥ ११७ ॥
भृत्या: स्निग्धा अति सुमधुरप्रोज्ज्वलोदारभाज
स्तत्पादाब्जद्वितयसविधे सर्व एवावतीर्णा: ।
प्रापु: पूर्वाधिकतरमहाप्रेमपीयूषलक्ष्मीं
स्वप्रेमाणं वितरति जगत्यद्भुतं हेमगौरे ॥ ११८ ॥
हसन्त्युच्चैरुच्चैरहह कुलवध्वोपि परितो
द्रवीभावं गच्छन्त्यपि कुविषयग्रावघटिता: ।
तिरस्कुर्वन्त्यज्ञा अपि सकलशास्त्रज्ञसमितिं
क्षितौ श्रीचैतन्येऽद्भुतमहिमसारेऽवतरति ॥ ११९ ॥
प्रायश्चैतन्यमासीदपि सकलविदां नेह पूर्वं यदेषां,
खर्वा सर्वार्थसारेप्यकृत नहि पदं कुण्ठता बुद्धिवृत्ति: ।

प्रेम रसिक स्वयं भगवान श्री गौरचंद्र के इस पृथिवी पर अवतीर्ण होने पर शंकर आदिक देवता, नारद आदिक भक्त वृंद, लक्ष्मी, श्री बलदेव, और यादव गण तथा समस्त गोप गोपी, एवं ब्रजवासी गण; अवतीर्ण हुए थे ॥ ११७ ॥

अद्भुत प्रेम रस बाँटने के लिए, सोने से शरीर वाले श्रीगौर हरि के अवतीर्ण होने पर अति मधुर, उज्वल, मनोहर, भाव भाजन भृत्यगणों ने तथा सखा गणों ने उनके चरणों के निकट अवतीर्ण होकर पहिले से बहुत ज्यादा सम्मत्ति पाई थी ॥ ११८ ॥

बड़ी आश्चर्य्य महिमा वाले श्रीचैतन्य देव के पृथ्वी में अवतीर्ण होने पर कुल वधुओं ने भी उच्च स्वर से हास्य किया, पाषाण से भी कठोर हृदय वाले व्यक्तियों का हृदय भी पसीज गया, मूर्ख लोग भी तत्वज्ञ हो शास्त्रों को तिरस्कार करने लगे॥११९॥

पहिले शास्त्रज्ञ पण्डितों को भी प्राय: चैतन्यता न थी और उनकी बुद्धि लघु तथा कुण्ठित थी, क्योंकि यह सम्पूर्ण अर्थों में

गम्भीरोदारभावोज्ज्वलरसमधुरप्रेमभक्तिप्रवेशः
केषां नासीदिदानीं जगति करुणया गौरचन्द्रेऽवतीर्णे ॥१२०॥
श्रीमद्भागवतस्य यत्र परमं तात्पर्यमुट्टङ्कितं,
श्रीवैयासकिना दुरन्वयतया रासप्रसङ्गेऽपि यत् ।
यद्राधारतिकेलिनागररसास्वादैकसद्भाजनं
तद्वस्तु प्रथनाय गौरवपुषा लोकेऽवतीर्णो हरिः ॥ १२१ ॥
केचिद्दास्यमवापुरुद्धवमुखाः श्लाघ्यं परे लेभिरे,
श्रीदामादिपदं व्रजाम्बुजदृशां भावञ्च भेजुः परे ।
अन्ये धन्यतमा धयन्ति सुधियो राधापदाम्भोरुहं,
श्रीचैतन्यमहाप्रभोः करुणया लोकस्य काः सम्पदः ॥१२२॥

साररूप श्री कृष्ण भजन में प्रवृत्त नहीं हुई थी । किन्तु इस समय करुणा के वश हो, श्रीचैतन्य देव के उदय होने से अति गम्भीर उदार भाव युक्त उज्वल रस द्वारा अत्यन्त मधुर जो प्रेम भक्ति है, उसमें किसका प्रवेश नहीं हुआ ? ॥ १२० ॥

श्रीमद्भागवत का तात्पर्य जो व्यास नन्दन श्री शुकदेव द्वारा रास प्रसंग में उद्देशितमात्र हुआ है, उसे तथा श्रीराधा की निकुञ्ज रति लीला के नागर श्रीकृष्ण की रास लीला के आस्वादक प्रेम को फैलाने के लिऐ, वही स्वयं हरि गौर देह से संसार में अवतीर्ण हुए हैं ॥ १२१ ॥

श्रीचैतन्यदेव की करुणा से किसे कौन सी सम्पत्ति प्राप्त नहीं हुई ? पहिले श्रीकृष्णावतार के भक्त उद्धवादि ने श्रीगौराङ्गावतार में जन्म लेकर ब्रज भृत्य रक्तक,पत्राादि के दास भाव को प्राप्त किया है, किसी २ ने ब्रज गोपियों का भाव पाया हैं, किन्तु जिन लोगों ने केवल श्री राधा की चरण माधुरी आस्वादन की है, वे ही लोग महा धन्य हैं ॥ १२२ ॥

सर्वज्ञैमु निपुङ्गवैः प्रवितते तत्तन्मते युक्तिभिः,
पूर्वं नैकतरत्र कोपि सुदृढं विश्वस्त आसीज्जनः ।
सम्प्रत्यप्रतिमप्रभाव उदिते गौराङ्गचन्द्रे पुनः,
श्रुत्यर्थो हरिभक्तिरेव परमः कैर्वा न निर्द्धार्यते ॥ १२३ ॥
विश्वं महाप्रणयसाधुसुधारसैक,
पाथोनिधौ सकलमेव निमज्जयन्तम्
गौराङ्गचन्द्रनखचन्द्रमणिच्छटायाः
कञ्चिद्विचित्रमनुभावमहं स्मरामि ॥ १२४ ॥
अतिपुण्यैरतिसुकृतैः कृतार्थीकृतः कोऽपि पूर्वैः ।
एवं कैरपि न कृतं यत्प्रेमाब्धौ निमज्जितं बिश्वम् ॥ १२५ ॥
धर्मे निष्ठां दधदनुपमां विष्णुभक्तिं गरिष्ठां,
संबिभ्राणो दधदिह हि हृत्तिष्ठतीवाश्मसारम् ।

पहिले सर्वज्ञ महर्षियों ने युक्ति युक्त मतों को प्रकाशित किया था, परन्तु उसपर कोई दृढ़ विश्वासी न था, सर प्रति अतुल प्रभाव शाली श्री गौरचन्द्र के उदित होने पर वेद प्रति पादित जो केवल हरिभक्ति है, उसे सब ने ही धारण किया ॥ १२३ ॥

मैं श्री गौरचन्द्र के नखरूप चन्द्रकान्तमणि छटा से कोई अकथनीय अनुभाव स्मरण करता हूँ, जो प्रेम सुधासागर में इस विश्व को निमग्न करने वाली है ॥ १२४ ॥

पहिले (श्रीगौरांगावतार के पूर्व) वड़े पुण्य और सुकृति से कोई २ कृतार्थ हुए हैं, किन्तु श्रीचैतन्य देव ने प्रेम सागर में जिस प्रकार बिश्व को निमज्जित किया है, ऐसा किसी ने नहीं किया था ॥ १२५ ॥

धर्म्म विषय की पूर्ण निष्ठा, श्रीविष्णु विषयक महत्व, साधारण करने पर भी सब मनुष्य पत्थर से हृदय वाले थे, किन्तु

नीचो गोघ्नादपि जगदहो त्मावयत्यश्रुपूरैः,
को वा जानात्यहह गहनं हेमगौराङ्गरङ्गम् ॥ १२६ ॥
क्वचित्कृष्णावेशान्नटति वहुभङ्गीमभिनयन्,
क्वचिद्राधाविष्टो हरि हरि हरीत्यार्त्तिरुदितः ।
क्वचिद्रिङ्गन्वालः क्वचिदपि च गोपालचरितो,
जगद्गौरो विस्मापयति वहुगम्भीरमहिमा ॥ १२७ ॥
वेलायां लवणाम्बुधेर्मधुरिमप्रागभावसारस्फुर
ल्लीलायां नववल्लवीरसनिधेरावेशयन्ती जगत् ।
खेलायामपि शैशवे निजरुचा विश्वैकसंमोहिनी,
मूर्तिः काचन काञ्चनद्रवमयी चित्ताय मे रोचते ॥१२८॥

अब श्रीगौरहरि की कृपा से प्रेमाश्रु प्रवाह द्वारा गौ घाती की अपेक्षा भी नीच मनुष्य संसार को प्लावित किए देते हैं, आहा ! सुवर्णाभ श्रीगौरचन्द्र की लीला को कौन नहीं जान सक्ता है ?

श्री कृष्ण आवेश से कभी बाल गोपाल लीला प्रकाश कर, कभी अनेक भाव भङ्गियों से नाचकर, कभी श्रीराधा भाव में मग्न हो 'श्रीहरि' शब्द उच्चारण पूर्वक फुफकार करके बिरह पीडा से क्रन्दन करते हुए, अति गम्भीर स्वभाव होकर श्रीगौर हरि ने संसार को आश्चर्यान्वित कर दिया है ॥ १२७ ॥

श्रीगौरचन्द्र की जो मूर्ति समुद्र तट पर शैशव क्रीड़ा से विश्व को मोहित करती है, और जो श्री राधा तथा रसनिधि कृष्ण के माधुर्य्य द्वारा स्फूर्ति युक्त लीलासे संसार को आवेशित करती है, उसी काञ्चन रसमयी ने हमारे हृदय में प्रवेश किया है ॥ १२८ ॥

'प्रेमा' नामक पुरुषार्थ, जिसे पहिले किसीने कान से भी न सुना था, श्रीबृन्दावन की परम माधुरी जिसमें कोई भी प्रवेश

प्रेमा नामाद्भुतार्थः श्रवणपथगत. कस्य नाम्नां महिम्नः
को वेत्ता कस्य वृंदावनविपिनमहामाधुरीषु प्रवेशः ।
को वा जानाति राधां परमरसचमत्कारमाधुर्यसीमा
मेकश्चैतन्यचंद्रः परमकरुणया सर्वमाविश्चकार ॥१२६॥

अथ श्री गौराङ्गरूपोल्लासादिः

पूर्णं प्रेमरसामृताब्धिलहरी लोलांगगौरच्छटा,
कान्त्याच्छादितविश्वमीश्वरविधिव्यासादिभिः संस्तुतम् ।
दुर्लक्ष्यां श्रुति कोटिभिः प्रकटयन्मूर्ति जगन्मोहिनी,
माश्चर्यं लवणोदरोधसि परं ब्रह्म स्वयं नृत्यति ॥ १३० ॥
कोऽयं पट्टधटीविराजितकटीदेशः करे कङ्कणं,
हारं वक्षसि कुण्डलं श्रवणयोर्बिभ्रत्पदे नूपुरम् ।
ऊर्द्धीकृत्य निबद्धकुन्तलभरप्रोत्फुल्लमल्लीस्रगा
पीडः क्रीडति गौरनागरवरो नृत्यन्निजैर्नामभिः ॥ १३१ ॥

न करसका था, और परमाश्चर्य माधुर्य रसकी पराकाष्ठा रूपिणी राधिका जिससे पहिले कोई भी जान कार न था, इन सब अलभ्य पदार्थों का आविष्कार श्रीचैतन्य देवने ही उदित हो करके किया है ॥ १२६ ।

जिन्होंने प्रेम पूर्ण अमृतसागर की तरङ्ग में गौर देहकी कान्ति समूह से संसार आच्छादित किया है, और व्यास ब्रह्मा आदि जिनकी स्तुति करते हैं; वही परब्रह्म श्रीगौरहरि श्रति द्वारा भी अदृष्ट चमत्कार दिखाने वाली जगन्मोहिनी मूर्तिप्रकाश कर स्वयं लवण समुद्र के तीर पर नृत्य करते हैं ॥ १३० ॥

जो कमर में पट्ट वस्त्र, हाथ में कंकण, वक्षःस्थलपर हार, कानोंमें कुण्डल, चरणों में नूपुर, केशोंकी ऊंची बंधी हुई

देवा दुन्दुभिवादनं विदधिरे गन्धर्वमुख्या जगुः,
सिद्धाः सन्तत पुष्पवृष्टिभिरिमां पृथ्वीं समाच्छादयन्।
दिव्यस्तोत्रपरा महर्षिनिवहाः प्रीत्योपतस्थुर्निज
प्रेमोन्मादिनि तांडवं रचयति श्रीगौरचन्द्रे भुवि ॥ १३२॥
क्षणं हसति रोदिति क्षणमथ क्षणं मूर्च्छति,
क्षणं लुठति धावति क्षणमथ क्षणं नृत्यति।
क्षणं श्वसिति मुञ्चति क्षणमुदारहाहारुतिं,
महाप्रणयसीधुना विहरतीह गौरो हरिः ॥ १३३॥
अश्रूणां किमपि प्रवाहनिवहैः क्षौणीं पुरः पंकिलां,
कुर्वन् पाणितले निधाय वदरापाण्डुं कपोलस्थलीम्।
आश्चर्यं लवणोदरोधसि वसन् शोणं दधानोऽशुकं,
गौरीभूय हरिः स्वयं वितनुते राधापदाब्जे रतिं ॥ १३४॥

जटामें विकसितमल्लिका धारण किए हैं, वही एक अनिर्वचनीय नागर श्रीचैतन्य अपने नाम कीर्तन के साथ नृत्यकर क्रीडा कर रहे हैं॥ १३१॥

प्रेम में मत्त हो श्रीचैतन्यचन्द्र के पृथिवी में नृत्य आरम्भ करने पर देवता गण दुन्दुभी बजाते हैं, बड़े २ गन्धर्व गण गान करते हैं, सिद्धगण फूलोंकी वृष्टि से पृथ्वी को आच्छादन करते है और महर्षि गण प्रीति से स्तव पाठ करते हैं॥ १३२॥

श्री गौरांग महाभाव रूपी अमृत रस में सिक्त हो कभी हँसते, कभी रोते, कभी मूर्च्छित होते, कभी पृथ्वी पर लोटते, कभी दौड़ते, कभी नाचते, कभी चैतन्य लाभ करते और कभी हा हा ! शब्द से रोते हैं, क्षण क्षण में इस तरह के वह अनेक भावों से बिहार करते हैं॥ १३३॥

स्वयं श्री कृष्ण चन्द्र गौर शरीर से अवतार धारण कर समुद्र तीर पर बैठे हुए, वह हथेली पर बदरी फल के समान

पादाघातरवैर्दिशो मुखरयन्नेत्राम्भसां विंदुभिः,
क्षौणीं पंकिलयन्नहो विषदयन्नट्टाट्टहासैर्नभः ।
चन्द्रज्योतिरुदारसुन्दरकटिव्यालोलशोणाम्वरः,
को देवो लवणोदकूलकुसुमोद्याने मुदा नृत्यति ॥ १३५॥

अथ शोचकम्

सर्वैराम्नायचूड़ामणिभिरपि न संलक्ष्यते यत्स्वरूपं,
श्रीशब्रह्माद्यगम्या सुमधुरपदवी कापि यस्यातिरम्या ।
येनाकस्माज्जगच्छ्री हरिरसमदिरामत्तमेतद् व्यधायि,
श्रीमच्चैतन्यचन्द्रः स किमु मम गिरां गोचरश्चेतसो वा १३६
जाड्यं कर्मसु कुत्रचिज्जपतपो योगादिकं कुत्रचिद्-
गोविंदार्चनविक्रियःक्वचिदपि ज्ञानाभिमानः क्वचित् ।

पाण्डुवर्ण कपोल को धरकर आँसुओं से सामने की पृथ्वी को गीली (कीचड़) कररहे हैं, और मनोहर लाल वस्त्र धारण कर श्री राधा के चरणों में रति बढ़ाते हैं ॥ १३४ ॥

जो चरणों के आघात शब्द से चारों दिशाओं को गुँजाते, आँसुओं से पृथ्वी को तर करते, तथा अट्टहास्य से आकाश को शुभ्र करते हैं, वही चन्द्र कान्ति श्री गौर चन्द्र कटिस्थ लाल वस्त्र से सुशोभित हो, समुद्र तीर वाले उद्यान में नृत्य कर रहे हैं ॥ १३५ ॥

सकल वेदों के शिरोभाग उपनिषद भी जिनका स्वरूप नहीं जानते, जिनका कोई उपदेश पथ लक्ष्मी, शिव और ब्रह्मादि से भी दुर्ज्ञेय है और कृपा पात्र भक्तों को सुलभ है, जिन्होंने अचानक इस संसार को श्री राधा कृष्ण की प्रेम रस रूपी मदिरा मे मतवाला कर दिया है, वही श्री चैतन्य देव क्या मेरे वाक्य और मन के गोचर होंगे ॥ १३६ ॥

हा ! गौरांग देव ! कहाँ गए ? आपकासा निर्मल प्रेमो-

श्री भक्तिः क्वचिदुज्ज्वलापि च हरेवाङ्‌मात्र एव स्थिता,
हा चैतन्य कुतो गतोऽसि पदवी कुत्रापि ते नेक्ष्यते ॥१३७॥
अभिव्यक्तो यत्र द्रुतकनक गौरो हरिरभू-
न्महिम्ना तस्यैव प्रणयरसमग्नं जमदभूत।
अभूदुच्चैरुच्चैस्तुमुलहरिसंकीर्तनविधिः
स कालः किं भूयोऽप्यहह परिवर्तेत मधुरः ॥ १३८॥
सैवेयं भुवि धन्यगौडनगरी वेलापि सैवाम्बुधेः
सोऽयं श्री पुरुषोत्तमो मधुपतेस्तान्येव नामामि तु।
नो कुत्रापि निरीक्ष्यते हरि हरि प्रेमोत्सवस्तादृशो,
हा चैतन्य कृपानिधान! तव किं वीक्ष्ये पुनर्वैभवम् ।१३६।
यदि निगदितमीनाद्यंशवद्गौरचन्दो,
न तदपि स हि कश्चिच्छ्राक्तलीलाविकाशः ।

ज्वल रस भक्ति मार्ग कहीं भी नहीं दीखता, प्रत्युत किसी सम्प्रदाय में-कर्म्म जड़ता, किसी में जप, तप, योगादि किसी में गोविंदार्चन, किसी में ज्ञान विषयक अभिमान, कहीं परमोज्वल भक्ति कथन मात्र में वर्तमान है, सर्वत्र ही यही दशा दीख रही है ॥ १३७ ॥

जिस समय में तप्तकाञ्चन कान्ति धारी श्री गौरांग अवतीर्ण हुए थे, जिसकाल में उनकी महिमा से जगत् प्रणय रस में लीन होगया था, और जिस समय में हरि संकीर्तन होता था, हाय! क्या वह सुखमय काल फिर आवेगा ॥ १३८ ॥

संसार में वह पुण्यतम गौड़ नगरी, वह समुद्रकूल, वही पुरुषोत्तम मधुपति श्री कृष्ण की अमल नामावली विराजमान है, किन्तु वैसा पुण्योत्सव कहीं नहीं दीखता। हा श्री चैतन्य! हा करुणामय! क्या आपका वह वैभव फिर देख सकूँगा ॥१३६

यदि श्रुति पुराणादिक कथित मत्स्य आदि अंशावतार की

अतुलसकलशक्त्याश्चर्यलीलाप्रकाशै-
रनधिगतमहत्त्वं पूर्ण एवावतीर्ण: ॥ १४० ॥
ब्रह्मेशादिमहाश्चर्यमहिमापि महाप्रभु: ।
मुग्धबालोदितं श्रुत्वा स्निग्धोऽवश्यं भविष्यति ॥ १४१॥
दृष्टं न शास्त्रं गुरवो न दृष्टा,
विवेचितं नापि बुधै: सुबुद्ध्या ।
यथा तथा जल्पतु बालभावा-
त्तथैव मे गौरहरि: प्रसीदतु ॥ १४२ ॥
इति श्रीपादगोस्वामिप्रबोधानन्दसरस्वतीमहोदयविरचित:
श्री चैतन्यचन्द्रामृत: ग्रन्थो द्वादशविभाग:सम्पूर्ण:

भाँति श्री गौरचन्द्रावतार को भी अंशावतार कहो-तो वह बात नहीं है, क्योंकि इन मत्स्यादि अवतारों में शक्ति और लीला प्रकाशित नहीं हुई, किन्तु महामहिम श्री गौरचन्द्र ने अतुल शक्ति, आश्चर्य लीला, प्रकाशित की है, अत: पूर्णावतार ही जानना चाहिये अंशावतार कथन भ्रममात्र है॥१४०॥

जो ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं के भी आदि कारण अत्याश्चर्य महिम हैं, वही श्री गौर चन्द्र हमारे समान मूर्ख बालक की बातें सुन कर अवश्य ही स्निग्ध होंगे ॥ १४१ ॥

हमारा यह बाल्य भाषण वाक्यावली मूर्खता से युक्त है, क्योंकि मैंने शास्त्र नहीं देखा, गुरुओं से उपदेश नहीं लिया, पण्डितों की सुबुद्धि से विचार भी नहीं किया, इस से शुद्ध हो, चाहे अशुद्ध हो, श्री गौरचन्द्र हमारे ऊपर प्रसन्न हो सकें इतना ही मेरा वाञ्छनीय है॥ १४२ ॥

श्री पाद प्रबोधानन्द का बनाया 'श्रीचैतन्यचन्द्रामृत" का हिन्दी भाषानुवाद गोस्वामी कृष्णचैतन्यजी कृत समाप्त हुआ ।

श्रीहरिनाम व्याख्या ।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

सर्वचेतो हरः कृष्णस्तस्यचित्तं हरत्यसौ ।
वैदग्धीसारविस्तारैं रतो राधा हरा मता ॥ १ ॥

कर्षति स्वीयलावण्यमुरलीकलनिःस्वनैः ।
श्रीराधामोहनगुणालंकृतः कृष्ण ईर्य्यते ॥ २ ॥

श्रूयते नीयते रामे हरिणी हरिणेक्षणा ।
एकाकिनी रहः कुञ्जे हरेयं तेन कथ्यते ॥ ३ ॥

अङ्गश्यामलिमस्तोमैः श्यामलीकृत काञ्चनः ।
रमते राधया सार्द्धं मनः कृष्णो निगद्यते ॥ ४ ॥

कृत्वारण्ये सरः श्रेष्ठं कान्तयानुमतस्तया ।
आकृष्य सर्व्वतीर्थाणि तज्ज्ञानान् कृष्ण ईर्य्यते ॥५॥

कृष्णेति राधया प्रेम्ना यमुनातटकाननम् ।
लीलया ललितश्चापि धीरैः कृष्ण उदाहृतः ॥ ६ ॥

हतवान गोकुले तिष्ठन्नरिष्टं पुष्टपुङ्गवम् ।
श्रीहरि स्तं रसादुच्चैरायतीति हरा मता ॥ ७ ॥

ह्यस्फुटं रायति प्रीतिभरेण हरिचेष्टितं ।
गायतीति मता धीरैं हरा रसविचक्षणैः ॥ ८ ॥

रसावेश-परिस्रस्तां जहार मुरलीं हरेः ।
हरेति कीर्त्तिना देवी विपिने केलिलम्पटा ॥ ९ ॥

गोवर्द्धनदरीकुञ्जे परिरम्भविचक्षणः ।
श्रीराधां रमयामास रामस्तेन मतो हरिः ॥ १० ॥

हन्ति दुःखानि भक्तानां राति सौख्यातिचान्वहं ।
हरा देवी निगदिता महाकरुणशालिनी ॥ ११ ॥

रमते भजतो चेतः परमानन्दवारिधौ ।
अत्रेति कथितो रामः श्यामसुन्दरविग्रहः ॥ १२ ॥
रमयत्यच्युतं प्रेम्ना निकुञ्जवनमन्दिरे।
रामा निगदिता राधा रामो युत स्तया पुनः ॥ १३ ॥
रूर्वाद्भिर्गोकुले दावानलमाशयति ह्यसौ ।
विशोषयति तेनोक्तो रामो भक्तसुखावहः ॥ १४ ॥
निहन्तुमसुरान् यातो मथुरापुरमित्यसौ ।
तदागमद्रहः कामो यस्याः साऽसौ हरेति च ॥१५॥
आगत्य दुःखहर्त्ता यो सर्वेषां ब्रजवासिनाम् ।
श्रीराधाहारिचरितो हरिः श्रीनन्दनन्दनः ॥ १६ ॥

इति श्रीजीबगोस्वामिना विरचिता
हरिनामव्याख्या समाप्ता ॥

॥ श्रीगौराङ्गमहाप्रभोः पादचिन्हानि ॥

छत्रं शक्ति यवाङ्कुशं परि–चतुर्जम्बुफलं कुण्डलं,
बेदी दण्ड गदा रथाम्बुज चतुः स्वस्तिञ्च कोणाष्टकं ।
शुद्धं पर्व्वतमुर्द्ध रेखाममलोऽङ्गुष्ठात् कनिष्ठावधे
र्बिभ्रद्दक्षिणपादपद्ममलं शच्यात्मजश्रीहरेः ॥ १ ॥
शंखाकाश-कमण्डलुं ध्वजलता-पुष्पस्रजार्द्धेन्दुकं
चक्रं निज्याधनुस्त्रिकोणवलयापुष्पं चतुष्कुम्भकम् ।
मीनं गोष्पद कूर्म्ममासुहृदयाङ्गुष्ठात् कनिष्ठावधे-
विभ्रद् सव्यपदाम्वुजं भगवतो विश्वम्भरस्य स्मर ॥२॥
यवमंगुष्ठमूले च तत्तले चातपत्रकम् ।
अंगुष्ठतर्ज्जनीसन्धिभागस्थामूर्द्ध रेखिकाम् ॥ ३ ॥

सुकुञ्चितां सूक्ष्मरूपां स्मर रे मे मनः सदा।
तर्जन्यास्तु तले दण्डं वारिजं मध्यमातले ॥ ४ ॥

तत्तले पर्वताकारं तत्तले च रथं स्मर।
रथस्य दक्षिणे पार्श्वे गदां वामे च शक्तिकाम् ॥ ५ ॥

कनिष्ठायास्तलेऽङ्कुशं तत्तले कुलिशं स्मर।
वेदिकां तत्तले व्याप्तां तत्तले कुण्डलं ततः ॥ ६ ॥

एषां चिन्हतले दीप्तं स्वस्तिकानां चतुष्टयं।
अष्टकोणसमायुक्त सन्धौ जम्वु चतुष्टयम् ॥ ७ ॥

असव्याङ्घ्रौ महालक्ष्य स्मर गौरहरेर्मनः।
अथ वामपदांगुष्ठमूले शंखं तले पविम् ॥ ८ ॥

मध्यमातल आकाशं तद्द्वयाधो धनुः स्मर।
गुणेन रहितं चापं वलया मणिमूलके ॥ ९ ॥

कनिष्ठायास्तले चैकं सुशोभनं कमण्डलुम।
तस्य तले गोष्पदाख्यं सत्पताकां ध्वजां पुनः ॥ १० ॥

चिन्तय तत्तले कुम्भान् चतुरः सु मनोरमान्।
तेषां मध्ये चार्द्धचन्द्रं तले कूर्म्मं सुशोभनम् ॥ ११ ॥

शफरी तत्तले रम्यां तस्यापि दक्षिणे पुनः।
कूर्म्मस्य तुल्यभागे तु निम्ने घटतलेऽपि च ॥ १२ ॥

मनोरमां पुष्पमालां स्मर वामांघ्रिपंकजे।
इति द्वात्रिंशच्चिन्हानि गौराङ्गस्य पदाब्जयोः ॥ १३ ॥

इति श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तीठक्कुरमहाशयविरचित
श्री गौराङ्गपदरूपचिन्तामणिः

❀ श्री श्री गौरांगविधुर्जयति ❀

भज–निताइ गौर राधेश्याम।
जप–हरेकृष्ण हरे राम॥

श्री श्री सङ्गीतमाधवम्

परिव्राजकचूड़ामणि

श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतिपाद

विरचितं

वृन्दाबन निवासि गोस्वामी श्री रासबिहारी शास्त्री
नव्यव्याकरणाचार्य्य, काव्यतीर्थ,
आयुर्वेदाचार्य्य महोदय द्वारा
अनुवादितं

—❀—

अर्थ सहायक—

वैष्णवदासानुदास–रघुनन्दनप्रसादसिंह
(राजा, सर) के टी०
राजवाटी (मुंगेर)

प्रकाशकः—

बाबा कृष्णदास

कुसुमसरोवर (गोवर्द्धन) मथुरा।
सम्वत् २००८
रथयात्रा

गौडीयग्रन्थगौरवः—

व्रजभाषा में प्रकाशित प्राचीन पुस्तकें—

१—गदाधरभट्टजी की वाणी
२—सूरदास मदनमोहनजी की वाणी
३—माधुरीवाणी (माधुरीजी कृता)
४—वल्लभरसिकजी की वाणी
५—गीतगोविन्दपद (श्रीरामरायजीकृत)
६—गीतगोविन्द (रसजानिवैष्णवदासजीकृत)
७—हरिलीला (ब्रह्मगोपालजीकृता)
८—श्रीचैतन्यचरितामृत (श्रीसुबलश्यामजीकृत)
९—वैष्णववन्दना [भक्तनामावली] (वृन्दावनदासजीकृता)
१०–विलापकुसुमाञ्जलि (वृन्दावनदासजीकृत)
११–प्रेमभक्तिचन्द्रिका (वृन्दावनदासजीकृता)
१२–प्रियादासजी की ग्रंथावली
१३–गौराङ्गभूषणमञ्जावली (गौरगनदासजीकृता)
१४–राधारमणरससागर (मनोहरजीकृत)

सानुवाद संस्कृतभाषा में—

१—अर्च्चाविधिः
२—प्रेमसम्पुटः (श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तीजीकृत)
३—भक्तिरसतरंगिणी (श्रीनारायणभट्टजीकृता)
४—गोवर्द्धनशतक (विष्णुस्वामी संप्रदायाचार्य्य श्रीकेशवाचार्य्यकृत)
५—चैतन्यचन्द्रामृत और सङ्गीतमाधव (श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीजीकृत)
६—नित्यक्रियापद्धति (संगृहित)

दो शब्द

आज गुरुगौराङ्ग की कृपा से श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वतीजी के द्वारा विरचित "श्रीसङ्गीतमाधव" नामक गीतिकाव्य भी अनुवाद के साथ प्रकाशित कर रसिक प्रेमीजनों के समक्ष उपस्थित कर सका हूँ। अवश्य ही इस बात को सब कोई स्वीकार करेंगे कि ग्रन्थकार सरस्वती महोदय-युगल केलि निकुञ्ज विलास-वैभव वर्णन करने में परम सिद्धमुख हुए। इनके द्वारा विरचित यह "सङ्गीतमाधव" नामक गीतिकाव्य देखने से पता चलता है कि इन्होंने सचमुच ही अपने पूर्वाचार्य्य श्रीजयदेव गोस्वामी विरचित "गीतगोविन्द" काव्य को ही सामने रखकर ठीक उसी के समान दूसरे गीतगोविन्द की रचना कर दिखायी। विद्वान् समाज में यदि किसी की धारणा है कि गीतगोविन्द सा दूसरा काव्य नहीं बन सकता है तो उनसे प्रार्थना है कि वे इस "सङ्गीतमाधव" ग्रन्थसे गीतगोविन्द को तथा गीतगोविन्दसे सङ्गीतमाधव को मिलाकर देखलें तथा हृदयबद्ध भूल धारणा को भूल जावें। अधिक क्या कहें–विद्वानोंके आगे ग्रन्थ प्रस्तुत है। यह गीतिकाव्य गीतगोविन्द के अनुकरण पर रचा होने पर भी स्थल विशेष पर अपनी रचना परिपाटी और शब्दविन्यास-प्रणाली में अधिक सुललित तथा चित्त चमत्कार रूप है। यह ग्रन्थ पहिले हमारे गुरुस्थान "श्रीराधारमणबाग-समाजवाड़ी-श्रीधाम नवद्वीपसे बंगानुवाद के साथ बंगाक्षर में प्रकाशित हो चुका है। सम्प्रति-गौरनिष्ठ,राजा रघुनन्दन प्रसादसिंह,मुंगेर निवासी के आग्रह से तथा उन्हीं के सम्पूर्ण आर्थिक सहायता से अब यह ग्रन्थ हिन्दी

अनुवाद के साथ देवाक्षरों में प्रकाशित हो रहा है। परिशेष में वृन्दाबन निवासी श्रीयुक्त मान्यवर, गोस्वामी श्री रासबिहारी शास्त्री महोदय के हम परम आभारी हैं कि आपने अपने समय को इस ग्रन्थ के अनुवाद कार्य्य में लगा कर तथा प्रकाशनार्थ ग्रन्थ का सम्पूर्ण अनुवाद करके हमें चिर वाधित किया। निकुञ्ज विलास-वैभव का सम्पूर्ण अनुभव तब तक नहीं हो सकता है जब तक महाप्रभु में सम्पूर्ण न अनुराग हो। इसलिये ही हमने चैतन्यचन्द्रामृत तथा यह सङ्गीतमाधव ग्रन्थ दोनों एक संग ही प्रकाशित करके एक ही जिल्द में ग्रथित कर दिये हैं—यद्यपि श्रीसङ्गीतमाधव ग्रन्थ निकुञ्ज-विलास रहः केलि-विलास वर्णन के कारण सर्वसाधारणके पाठके लिए नहीं है तो भी हमारी प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन कार्य्य में मग्नबुद्धि इस दुरूह ग्रन्थ रत्न का प्रकाशन करने में प्रवृत्त हुई। आशा है रसिक समाज इस अद्भुत ग्रन्थरत्न को कंठहार रूप से ग्रहण करेंगे। बाबा केशवदासजी, भागवत निवास, वृन्दाबन के द्वारा-श्री गोस्वामी बनमालीलाल महोदय की लाइब्रेरी से प्राप्त "हरि-नामव्याख्या" तथा "कुञ्जकेलि-स्तोत्र" नामक दो वस्तू ग्रन्थन कर दिये गये हैं। सरस्वती महोदय द्वारा विरचित "आश्चर्य-रासप्रबन्ध" और कामगायत्रीव्याख्या भी हैं।

—कृष्णदास
कुसुम सरोवर।

॥ श्री गौरांगविधुर्जयति ॥

संगीत-माधवम्

गीतिकाव्यम्

प्रथमः सर्गः

श्रीश्री वृन्दावनोत्सवः

सदानन्दे बृन्दाबन निविडकुञ्जे नवतडिद्
घनज्योतिः पुञ्जं किमपि कलगुञ्जन्मधुकरे।
नवोन्मीलत्कैशोरक ललित लीला रस मयं
प्रियं तन्मे जीयान्मधुरमधुरं धाम-युगलम् ॥ १ ॥

अपारकरुणाराशिं कृष्णचैतन्यविग्रहम्।
कलौ कलुषनाशाय गौरचन्द्रमुपास्महे ॥ १ ॥

उज्ज्वल आनन्द से परिपूर्ण, विविध सौगन्ध की उद्गम-भूमि स्वरूप, श्री युगलकिशोर के मधुमय विलास से उत्पन्न सुगन्धि में उन्मत्त भ्रमरों की झंकार से शोभित, मधुमय श्रीबृन्दावन धाम की परम निभृत निकुञ्ज में नव सौदामिनी युक्त अभिनव जलधर कान्ति मनोहर लीला रसमय, मधुर से भी मधुर, हमारे कोटि प्राणों से भी अधिक प्रिय, अलौकिक रुप गुण विलासमय युगल विग्रह, सकल भुवन दुर्लभ उत्कर्ष का आविष्कार करें ॥ यह श्लोक श्री प्रबोधानन्द सरस्वती पाद ने अपने अभीष्ट देवता की वन्दना के निमित्त एवं इस ग्रंथ में मधुर युगल बिलास लीला वर्णित होगी इस उद्देश्य से उनका ही निर्देश करते हुए किया है। (१)

रे मन! तत्काल खिले हुए चम्पा के फूल की अपेक्षा अधिक

नवचम्पक-गौरकान्तिभिः कृतवृन्दावन-हेमरूपताम् ।
भज कामपि विश्वमोहिनीं मधुर प्रेम रसाधिदेवताम् ॥ २ ॥

महाप्रेमरसज्योतिरपारावारवारिधेः ।
मध्ये मोहन-कैशोर सारं राधाभिधं नुमः ॥ ३ ॥

परमरति रसाम्भो राशि कल्लोलमाला
तरलित-सुकुमार-श्याम-सन्मोहनांगः ।
व्रजललित-किशोरी-लम्पटः कोऽपि जीयात्
प्रमद-मदन-लीला-मुग्धमुग्धः किशोरः ॥ ४ ॥

स्वच्छ छटा से श्री वृन्दावन को धवलित करने वाली, वचन और मन से अगोचर उस भुवनमोहिनी प्रेम की एक मात्र अधिष्ठात्री देवी का तू सेवन कर ! अर्थात् सब प्रकार से उसका आश्रय ग्रहण करते हुए धन्यवाद का पात्र बन । (२)

महाप्रेम रस ज्योति अर्थात् महाभाव कान्ति मय अपार अनन्त अगाध समुद्र में मन को मुग्ध करने वाले नवकिशोर का सार वही मादन नामक महाभाव स्वरूप राधा नामक परम अनिर्वचनीय रत्न के लिये मैं सर्वथा आत्म समर्पण करता हूँ । (३)

अन्यत्त अद्भुत अननुभूतपूर्व संभोग रससागर की अभिवृद्ध तरङ्ग मालाओं से तरल, एवं अति सुकोमल मनोमोहकारी, नवजलधरकान्ति, ब्रजनवनागरीलम्पट, उन्माद विलास रस के द्वारा परम शोभित, मन वाणी से अगोचर, अर्थात् भाषा जिस रूप गुण लीला के वर्णन में अपनी असमर्थता प्रकट करती है वे नवकिशोर निरन्तर अपने इच्छानुकूल भोग विलास से सुखी रहें । (४)

हे मन ! अदम्य तृष्णा रूप उत्ताल तरङ्गों से क्षुभित, महा मन्मथ चक्रवर्त्ति द्वारा निर्मित, सम्भोग रस सागर की तरङ्गों से

उत्तरंग-महानंग-रसाब्धि-तरलं महः ।
पुलकाञ्चित-सर्वांगं भज राधाङ्ग भूषणम ॥ ५ ॥
परम रस विभूते दैवतस्यावतारं
जगति कृतरहस्य-प्रेमभक्ति-प्रचारम ।
लवणजलधिकूले कल्पितानल्पलीलं
स्फुरदरुण-दुकूलं धाम गौरं स्मरामि ॥ ६ ॥

अति अधीर गुलाबी रङ्ग वाले श्री मुखारविन्दादि विलाससुखाधिक्य जान, पुलकादि भूषणों से भूषित, श्री राधा के अङ्ग भूषण की सेवा कर। यह श्लोक सहचरी देह धारी ग्रन्थकार ने लता के नीचे खड़े होकर सहज, एवं विपरीत रस मग्न रसिकेन्द्र चूड़ामणि को लक्ष्य करते हुए कहा है। श्री राधा के अङ्ग भूषणों के वर्णन में सहज भाव बिजली के समान सर्वाङ्ग में आलिङ्गित नवघन-कान्ति, अथवा विपरीत भाव में श्री राधा के विद्युत् सदृश सर्वाङ्ग द्वारा वेष्टित नागरेन्द्र, विदित होता है। (५)

श्री वृन्दावन धाम के परम मधुर रस की विभूति, अर्थात् विलासादि रसों की अधिष्ठात्री देवी श्री राधिका जी के विषय स्वरूप विलास रसोन्मत्त वृन्दावन विहारी श्रीकृष्ण, का मिलित अवतार है। जिनने जगत् में परम रहस्य मूलक निज सम्पत्ति प्रेमा भक्ति का वितरण किया है, अरुण वसनधारी, नीलाचल में आपने ऐश्वर्य माधुर्य रूप अनन्त लीलाओं का विलास अनुभव किया, परम मोहन, तप्तकाञ्चन सदृश, गौर कान्ति वाले श्री गौराङ्ग को मैं स्मरण करता हूँ। (६)

किसी ने ब्रजकिशोरी एवं श्री वृन्दावन विहारी युगल, श्री राधा माधव के दुर्धर्ष महामदन चक्रवर्त्ति जनित, अदृष्ट, अश्रुत, अननुभूतपूर्व, विलास समूह की दर्शन इच्छा से सदा ही हृदय के

नित्योन्मदानन्दरसैककन्दं, कन्दर्पलीलाद्भुत-केलिकुन्दम्।
श्रीराधिकामाधवयो र्दिदृक्षुस्तुष्टाव वृन्दावन मेव कश्चित्॥ ७॥

वसन्तरागेण गीयते।

अद्‌भुत-सुरभि- समय सहजोदय मधुरलता-तरु जालं।
नव मकरन्द-महाद्भुत-परिमल-मत्त विचलदलिमालम्॥ (क)
वन्दे वृन्दाविपिनममन्दम्।
प्रेम-महारस-वेगविजृम्भित मदनमहोत्सवकन्दम्॥ ध्रु०॥
विकशदशोक-वकुल कुल चम्पक माधविकाभिरनूनम्।
सह निजवल्लभया ब्रजनागरलून-विचित्रविसूनम्॥ ख॥

उत्मादकारी नृत्य गीत विलासादि के आश्रय स्थान श्री वृन्दावन की स्तुति की है। जिसे ब्रजकिशोरी कहा जाता है यह ग्रन्थकार अपने सिद्ध देह को लक्ष्य करता है। (७)

मैं परम अनुराग से काय मन वाणी द्वारा श्री वृन्दावन की वन्दना करता हूँ। यह श्री वृन्दावन महाप्रेम रस तरङ्ग में उन्मत्त मदन महाचक्रवर्त्ती का महोत्सव रूप अशेष सम्भोगादि रस का एक मात्र आश्रय स्थान है। इस वृन्दावन में सदा ही वसन्त ऋतु विराजमान रहती है, अतः स्वभाव से ही नये नये पत्र पुष्प-फलादि से सुशोभित एवं प्रत्येक पत्र पुष्प फलादि में अपूर्व मकरन्द प्रवाहित रहता है, जिसकी सुगन्ध से दसो दिशाएं सुगन्धित बनी रहती हैं, एवं सौरभ से उन्मत्त भ्रमरगण चारों ओर गुञ्जार करते रहते हैं (क)

इसकी चारों ओर दिशाऐं अशोक, मौलश्री, चम्पा, एवं माधवी आदि लताओं से हरी भरी एवं पुष्पों से परिपूर्ण रहती

ललित कलिन्द सुता-लहरीकृत-मृदु मृदु शीकर वर्षम् ।
तुमुल रति श्रमितालस-तनुवर-रसिक मिथुन कृत हर्षम् ॥ (ग)
अद्भूत-रस-सरसि-लसदुपदल-मुकुलित-कनक सरोजं ।
प्राण समा कुच लोचन-संस्मृति कृत हरि-तीव्र मनोजम् ॥ (घ)
आस्तृत-कुसुम-घटित-मधुभाजन-मञ्जुल-कुञ्ज कुटीरं ।
राधामाधव-नवरति लीलागान-मदाकुल-कीरम् ॥ (ङ)
कुसुमित-फलित-कल्पलतावृत सुरतरु कृत परभागम् :
विविध मणीवृत-भूतल-निपतित-नवकर्पूर परागम् ॥ (च)

हैं। परम सौभाग्य है कि अपनी प्राण कोटि प्रिया श्रीराधिका जी के साथ रसमय नागर अनेक प्रकार के पुष्पों का चयन करते करते रस में विभोर होकर भ्रमण कर रहे हैं। (ख)

स्थान स्थान पर श्री यमुना जी मनोहर तरंगों से कोमल कोमल बिन्दु वर्षा रही हैं। जिसमें कि उद्दाम विलास श्रम दूर होकर श्री युगलकिशोर को परम सुख लाभ हो रहा है। (ग)

किसी रसमय सरोवर में परम शोभा युक्त स्वर्ण कमल के दल वायु से हिल रहे हैं एवं कलियां रस में विवश होकर श्री-राधाजी के नेत्र एवं स्तन युगल की स्मृति दिलाकर उद्दीपना द्वारा रसिकेन्द्र चूड़ामणि श्री कृष्ण के हृदय में उदय कर रहे हैं। (घ)

श्री वृन्दावन में स्थान स्थान पर पुष्प समूह मधुपूर्ण पात्र द्वारा सुसज्जित मनोहर कुञ्जकुटीर विराजमान हैं । कहीं कहीं श्री राधामाधव की नव नव सम्भोग रस लीला गानोन्मत्त तोता मैना बिहार कर रहे हैं। (ङ)

कहीं कहीं सुपुष्पित फलित कल्पलता परि वेष्ठित देववृक्ष श्री वृन्दावन की शोभा को बढ़ा रहे हैं। किसी स्थान में अनेक प्रकार के मणि जटित उज्वल भूमितल में कर्पूर पराग के समान पुष्प पराग गिर कर अपूर्व शोभा विस्तार कर रहा है। (च)

शिखि कुल नटन-मृगीचकितेक्षण-पिकपंचम कृतशोभं ।
प्रेम सुधाम्बुधि-दोलित खगपशु-संग-महामुनिलोभम । (छ)
नीलतमाल-बनान्तर निलयन-कौतुकि पिञ्छवतंशं ।
परिमल हरमृदु-मलयानिल भर-कृतराधापथशंसम । (ज)
ललित कदम्ब तले धृतभंगिम-मोहन-वादित-वंशं ।
निरबधि निजसुखसार-रसोन्माद-हरिकृत परमप्रशंसम । (झ)

किसी स्थान पर मयूरगण पूँछ फैलाकर नृत्य कर रहे हैं एवं मृगी कुल के चकित नयन भंगि द्वारा एवं कोकिलाओं की सुमधुर पञ्चम गान द्वारा आनन्द मय स्थान परमानन्दित हो रहा है। स्थान स्थान पर प्रेम सुधासागर में निमग्नोन्मग्न पशु पक्षिगण इतने परमानन्दित होरहे हैं कि बड़े बड़े सिद्ध ऋषि मुनिगण पर्यन्त उनके साथ रहने की इच्छा से श्री बृन्दाबन वास की प्रार्थना करते हैं। (छ)

कभी कभी उत्सुकता के कारण श्रीराधागोविन्द लुक छिपकर क्रीड़ा प्रसङ्ग में श्रीवृन्दावन के एक देश में, सघन तमालवन में अन्तर्हित होरहे हैं मयूरमुकुटधारी श्रीश्यामसुन्दर को अन्वेषण करती हुई श्रीराधाजी व्याकुल होगई। श्रीकृष्ण के अङ्ग परिमल को ग्रहण करता हुआ लीला सहायकारी सौगन्ध युत मलय पवन, श्री राधिकाजी को पथ प्रदर्शन कर श्री युगल किशोर के परमानन्द को बढ़ा रहा है। (ज)

कहीं कहीं श्रीवृन्दाबन के अति मनोहर कदम्ब के नीचे त्रिभङ्ग ललित श्री मदनमोहन मुरली बजाकर स्थावर, जङ्गम, पशु पक्षि समुदाय को आनन्द सागर में निमग्न कर रहे हैं। कहीं पर निरन्तर अपनी प्रिया के साथ उद्दाम विलास रसानन्द में उन्मत्त श्री कृष्ण इस वृन्दाबन की अत्यन्त प्रशंसा कर रहे हैं। (झ)

प्रियरसमत्त-सरस्वति-वर्णित-वृन्दावन-महिमानं।
पिवत बुधाः श्रवणेन सुधारस सार-मुदाकरगानम्। (ञ)
सान्द्रप्रेम रसामृतैकलहरि-स्यन्दीनि मन्दीकृत
ब्रह्मानन्द-समाधि सन्मुनि मनो हार्य्येक केलिस्थली।
ईशेनाप्यवितर्क्य-दिव्य-महिमान्याबिभ्रती श्रेयसे
भूयान्नःपशु पक्षि भूरुहलतावृन्दानि वृन्दाटवी ॥ ८ ॥
सहजाद्भुत सत्प्रभावत स्तव वृन्दावन! केवलं कदा।
त्वयि नित्यविहारि तन्महारसिक-द्वन्द्वमहं विलोकये ॥ ९ ॥

श्री ब्रज मधुर रसोन्मत्त श्री प्रबोधानन्द सरस्वती कृत श्री वृन्दावन महिमा सूचक परम सुधारस के गोंद का सहयोग एवं आनन्द का आकार स्वरूप इस सङ्गीत का भक्तगण कानों के पानपात्र द्वारा पान करें ॥ (ञ)

योगि श्रेष्ठ महादेव पर्यन्त जिनकी महिमा के वर्णन में पार नहीं पाते। उस अति प्रगाढ़ प्रेम रसामृत तरङ्गवर्षी, पशु-पक्षि तरु लता परिवेष्टित, ब्रह्मानन्द समाधि के दूसरी पार स्थित, बड़े बड़े मुनिगणों के मन को मोह करने वाला लीला विलास स्थल जिसमें वर्तमान है ऐसा श्री वृन्दावन धाम हमारा परम मङ्गल करै, अर्थात् श्री युगल लीला विलास प्रदान कर हम लोगों को कृतार्थ करै। (पाठान्तर में—जिसकी एक मात्र लीला स्थली एवं निविड़ प्रेम रसामृत राशि की एक मात्र तरङ्ग की उछाल ही ब्रह्मानन्द समाधि मग्न महामुनिगण की समाधि को विचलित कर मन को हरण करलेती है। श्रीमहादेव को भी अचिन्त्य दिव्य महा महिम मण्डित पशु पक्षि तरु लता पंक्ति शोभित वह श्री वृन्दावन धाम हमारा परम मङ्गल बिधान करें ॥ ८ ॥

हे परम रसमय श्री वृंदावन! आपके स्वाभिविक परम अद्भुत

अथ रसमय राधाकृष्ण--दास्यैकलुब्धा
निरवधि मृगयन्ती कुञ्ज-गेहावलीषु ।
तदति मधुरलीलानन्दि-राधा-सखीना-
मिदमकलयदारात् कीर्त्तनं सा मृगाक्षी ॥ १० ॥

मंगलगुज्जरी रागेण गीयते ।

प्रणत-सकलसुखदायक, व्रजनायक हे ।
बल्लव-राज-कुमार !
स्फुटसरसिरुहलोचन भयमोचन हे !
पालित-निज परिवार ॥ क ॥

प्रभाव के वशीभूत केवल आपके ही निरन्तर विलास निमग्न उस रसिक युगल का प्राण भरकर कब मैं दर्शन करूँगा ? यह बतलाइये ॥ ६ ॥

इस प्रकार वृन्दावन के प्रति प्रार्थना करके उस नवदासी ने परमरस निमग्न राधाकृष्ण की एक मात्र मधुर सेवामय, दासीत्व के प्रति लुब्ध होकर वृन्दावन की कुञ्जों में केवल मात्र युगल विलास दर्शन की लालसा से इतस्ततः अन्वेषण करते करते किसी स्थान पर श्री राधारानी की परमरस निमग्ना अति नर्म सखियों के आगे श्री राधारानी के मुख से निकले हुए इस सुमधुर संगीत को सुना ॥ १० ॥

एक दिन युगलकिशोर निभृत निकुञ्ज में पशुपक्षी आदि की तरह सहज विपरीत रूप में बहुत समय तक विलास रस में निमग्न होरहे थे। श्रान्त रसिकेन्द्र चूड़ामणि प्राणेश्वरी के वक्षःस्थल में अवस्थित थे। हठात् प्राणेश्वरी किसी रस विशेष के आस्वादन की इच्छा से करवट माननी की तरह प्राण वल्लभ को वक्षस्थल से हटाकर नीचे को मुख करके लेट गयीं । नागरेन्द्र अत्यन्त व्याकुल होकर प्राणेश्वरी के मान को दूर करने में सतत प्रयत्न

जय जय प्राण सखे ॥ ध्रु ॥
व्रजतरुणी-नवनागर रससागर हे,
रचित महारति रंग।
रसिक युवति-परिहासक कृतरासक हे,
ललितानंग तरंग ॥ ख ॥

करते हुए भी सफल नहीं हुए। विवश होकर अनेक प्रकार चातुर्य से उनके पीछे बैठकर विदग्ध नागर, विलास रस में उनका मान भंग करके उन्हें प्रसन्न किया। प्राणेश्वरी मन्द मन्द हँसती हुई हाथ जोड़कर बैठी हुँई इस संगीत को गाने लगी

:—प्रणत जनों को सब प्रकार से सुख देने वाले अर्थात् किसी भी रस के विशेष आस्वादन की इच्छा से पञ्चांग, साष्टांग अथवा दशांग दण्डवत् करने वालों को अशेष विशेष प्रकार के सुख देने वाले, हे व्रजनवरस लम्पट ! गोप राजनन्दन ! हे प्राणसखे ! आपकी जय हो। आप सर्वोत्कर्ष लाभ करें। प्राण प्रिया की अभिनय भाव में अवस्थिति देखकर खिन्ने नेत्रों से उसकी ओर दृष्टि पात किया और कहा कि हे विकसित पद्म पलाश लोचने ! हे कामादि पर पीड़ित! मुझ जैसे व्यक्ति के भय को दूर करने वाले ! हे निज परिवार ! अथवा नाना प्रकार संगादि द्वारा मेरे जैसे आश्रित जन के अथवा निज इन्द्रियों के परिपालक !

हे व्रजनागरीरतिहिण्डक ! हे महारास सागर हे निरन्तर अभिनव विलास रति रङ्ग कान्तिन् हे व्रज युवतियों के साथ परिहास रस में उन्मत्त रहने वाले हे रास बिहारी ! तुम्हारी क्षण क्षण में कितनी काम तरंगें हृदय में उठ रहीं हैं। (ख)

हे मुरली वदन ! धन्य है तुम्हारा चातुर्य, कोई यदि कपट भाव से सोरहा हो, अथवा मुख फेर कर खड़ा हो, किन्तु तुम उसको

मणिमय-बेणु लसन्मुख,　　नत-सन्मुख हे!
मृदु मृदु हासबिलास।
कुलवनिता- ब्रतभञ्जन　　रिपुगञ्जन हे!
नवरति केलिनिवास ॥ (ग) ॥
मधुर-मधुर-रस-नूतन　　हतपूतन हे!
नवघन नील शरीर।
तपनसुतातट-सन्नट　　रतिलम्पट हे!
धृतवर-मणिगण हीर ॥ (घ) ॥
स्फुरदरुणाधर-पल्लव　　व्रजबल्लभ हे!
राधा-मानसहंस।
श्रीलसरस्वति-गीतकं　　हरिभावदं,
मंगलमिह विदधातु ॥ (ङ) ॥

बलात्कार करके अपने सन्मुख कर लेते हो? और मृदु हास्य से उसका मन हरण करके विलास करते हो। हे कुल स्त्री-सती-ब्रत-भञ्जक! हे कामादि रिपु गञ्जक! हे नव नव वैदग्धयुक्त विलासरसनिधान!　　(ग)

तुम मधुर से भी मधुर रसबिलास में नित्य नवीन हो हे पूतना घातिन्! अतएव रमणियों के अजेयवीर्यशालिन्! हे नव जलधर कांति! हे यमुना पुलिन तट नट राज! हे नव लम्पट हे चुम्बनालिङ्गनादि से उत्पन्न हुए चिन्हों के माणि माणिक्यों के धारण करने वाले। (घ)

हे काम के वशीभूत होकर अरुण विकम्पिताधरपल्लव हे ब्रज जन बल्लभ! हे श्री राधा के मानस स्वरूप, सरोवर के कल हंस! श्री प्रबोधानन्द सरस्वती रचित हरि के भाव प्रद, अथवा मदन मोहन के मदनोत्पादक, यह गीत निकुञ्ज में मंगल अथवा परमोन्माद जनक वक्ष्यमाण रतिरण विधान करें।　　(ङ)

राधाया स्तन हेम कुम्भयुगले दत्वा करं पल्लवा—
भासं कोमल मूरु चारुकदली काण्डञ्च कृत्वोदितम् ।
निर्माय प्रतिरोधि-हस्त वलयध्वानञ्च तूर्यस्वनं
गोविंदः कृतमंगलो रतिरणारम्भे समुज्जृम्भते ॥ ११ ॥
मधुरं मधुरं मधुद्विष स्तदिदं गीतमतीव मङ्गलम् ।
श्रवणाञ्जलिभि र्निपीय सा स्मृत-गोविंदपदेदमुज्जगौ ॥ १२ ॥

वसन्तरागेण गीयते ।

मदशिखिपिञ्छ मुकुट परिलाञ्छित,
कुञ्चित-कच-निकुरम्बे ।

श्री राधा के स्तन युगल रूप सुवर्ण कलस के ऊपर पञ्चपल्लव के समान अपने दोनों हाथों को अर्पण करते हुए दोनों ओर अपनी दोनों जंघा रूप केला के दो वृक्षों को स्थापन करके एवं प्रतिसेधक हाथ की कङ्कण ध्वनि रूप मंगल वाद्य रूजन करके रति युद्धारम्भ में मंगलमय गोविंद परम सुख में विवर्धित हो रहे हैं ॥ ११ ॥

उस युगल रस की नवदासी श्री राधा पद्म मधुकर का यह मधुर लीला विलास परिपूर्ण, हृदयाह्लादक पूर्वोक्त गीत को सखियों के मुख से श्रवणाञ्जलिद्वारा पान करके, परमानंदित हृदय में श्रीराधा विलासोन्मत्त उच्च कण्ठ से इस गीत को गाया ॥ १२ ॥

हमारा मन मदन गोपाल में अर्थात् जिनमें मदन जनित बिलासादि द्वारा गोपियों की एवं अपनी सकल इन्द्रियों को सन्तुष्ट किया है, उन धीर ललित नागर मदनमोहन में सदा वास करे। मदनगोपाल का स्वरूप इस प्रकार है, आपके मस्तक पर टेढ़े केशकलाप, मयूरपुच्छ निर्मित मुकुट शोभित है। जिनके मुरली के गान से व्रज की नव-किशोरियाँ लज्जा और धैर्य की

मुखरित बेणु हृतत्रपधावित
नव नव-युवति कदम्बे ॥ (क)

वसतु मनो मम मदनगोपाले ।

नवरति केलि विलास परावधि, राधा सुरत रसाले ॥ध्रु०॥

कलिन कलिन्द सुता, पुलिनोज्ज्वल, कल्पमहीरुह मूले ।

किङ्किणि कलरव रञ्जित कटि तट, कोमलपीत दुकूले ॥ (ख)

त्याग कर उन्मत्त होकर बन को भागती है। जो क्षण २ में नव २ सुमधुरलीलाविलास की परम अवधिरूपा मादन नामक महा-भावस्वरूपा--श्रीराधिकाजी के नव २ संभोग में परम रसमय रहते है। जो सदा यमुनाजी के तटपर अत्युज्वल कल्पलता वृक्षके नीचे अनेक प्रकार के विहार करते हैं। (वृन्दाबन की तरुलतायें युगल किशोर की शोभा सुख के लिए वृन्दा की आज्ञा के अनुसार समय व्यतिरेक एवं फूल पुष्प पल्लव उत्पन्न करती हैं। इसलिए बृन्दाबन की तरुलताओं को कल्पवृक्ष कहा जाता है। (क)

जिनकी कटितटमें मुखरित किंकिणी एवं कोमल सुमधुर पीताम्बर सुशोभित हो रहा है। जिनके मुरली रंजित अधर पल्लव एवं नव जलधर निन्दित सुन्दर कांति बिशिष्ट किशोर अवस्था है। श्रीबृषभानु नन्दिनी श्रीराधा के भुवन मोहन मुख चन्द्रमा के सुख चकोर स्वरूप। गुञ्जा हार, मकरा कृति माणिमय कुण्डल, कंकण, एवं नूपुरादि द्वारा परमशोभित। मृदु मधुर हास्य एवं नयन कटाक्ष देख कर जिनके प्रति रसिक बृज-युवतियाँ लोभ परवश हो जाती हैं। (ख)

मुरली मनोहर मधुरतराधर,
घन रुचि-चौर किशोरे ।
श्रीवृषभानु कुमारी मोहन,
रुचिमुख चन्द्र चकोरे ॥ (ग)
गुञ्जाहार मकर मणि कुण्डल,
कङ्कण नूपुर--शोभे ।
मृदु मधुर स्मित चारुविलोकन,
रसिकवधूकृत लोभे ॥ (घ)
मत्त मधुव्रत गुञ्जित रञ्जित-
गल दोलित बनमाले ।
गन्धोद्वर्त्तित सुवलित सुन्दर,
पुलकित बाहु विशाले ॥ (ङ)
उज्ज्वल रत्न-तिलक ललितालिक--
सकनक-- मौक्तिक-नासे ।
शारद कोटि सुधा किरणोज्ज्वल,
श्रीमुख कमल-बिकाशे ॥ (च)

जिनके कण्ठ में लटकती हुई मनोहर बनमाला की गन्ध के कारण सदा भ्रमर गुञ्जार करते रहते हैं। जिनके सुदीर्घ बाहुयुगल नाना सुगन्ध द्रव्यों से सुगन्धित, सुवलित एवं रस संभार से पुलिकित हैं। (ङ)

अति उज्वल रत्न एवं मनोहर तिलक द्वारा मस्तक सुशोभित होरहा है। नासिका में सुवर्ण जटित गज मुक्ता झूल-रहा है। जिनका मुख कमल शरद के कोटि २ पूर्ण चन्द्रमा से भी अधिक उज्वल और प्रकाशमान है। (च)

जिनकी ग्रीवा कटि और चरण की भङ्गी से ललित त्रिभङ्ग

ग्रीवा कटिपद भङ्गि मनोहर,
नव सुकुमार-शरीरे ।
बृन्दाबन नब कुञ्ज गृहान्तर,
रतिरण रङ्ग सुधीरे ॥ (छ)
परिमल-सारस केशर चन्दन,
चर्च्चित तर लसदङ्गे ।
परमानन्द रसैक घनाकृति,
प्रवह दनङ्ग—तरङ्गे ॥ (ज)
पद नख चन्द्र मणिच्छविलज्जित,
मनसिज कोटि समाजे ।
अद्भुत केलि विलास विशारद,
ब्रजपुर नव युवराजे ॥ (झ)

सुन्दर सुकोमल शरीरधारी और वृन्दावन की नव निकुञ्ज में विलासरस रङ्ग में सुविदग्ध ॥ छ ॥

उनका मंगलमय सुकोमल श्री अङ्ग अगर कपूर केसर कस्तूरी चन्दन आदि अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्य से विलिप्त है। परमानन्द मय सम्भोग रस की अद्वितीय मूर्त्ति से सदा अनंग तरंग निकलती रहती हैं ॥ ज ॥

जिनकी चरण नखचन्द्र मणि की छटा मे कोटि २ काम का समाज पराजित हो जाता है। जो अति अपरूप नित्य नव २ लीला बिलास बिदग्ध और परम रसिक ब्रज जन युवराज हैं ; झ ॥

हे रसिकभक्तगण ! परम रसमय श्री पाद प्रबोधानन्द सरस्वतीकृत श्री कृष्ण के रूप सुधा सागर में अपने हृदय को डुबा कर परम सुखी होइये। तत्व ज्ञान विचारादि पूर्ण क्षार समुद्र में क्यों व्यर्थं कालक्षेप कर रहे हैं ॥ ञ ॥

नील कमल दल के समान कान्ति वाले, कोटि २ मन्मथ

रसद-सरस्वति वर्णित माधव-
रूप सुधारस-सारे ।
रमयत साधु वुधा निज हृदयं,
भ्रमथ मुधा किमसारे ॥ ञ ॥

कुवलयदलनील: कोटिकन्दर्पलील:
कनक रुचिदुकूल: केकिपिञ्छावचूल: ।

मथनकारी, लीला विहारी, पीताम्बरधारी, मस्तक पर मयूर मुकुट धारण करने वाले, कुलवती ब्रज बालाओं की नीवी शिथिल करते हैं । वे राधा पद्मिनी के राजहंस अर्थात् श्री राधा रति नायक हमारे हृदय में सदा स्फुरित हो ॥ १३ ॥

एक दिन दुर्जयमानवती श्री राधा उदास होकर घर में बैठी थीं । ललितादि सखियाँ अनेक कौशल और चातुर्य से उनको नागर के साथ मिलाने में असमर्थ थीं । एक ओर कामबाण से बिमुग्ध नागरेन्द्र निभृत निकुञ्ज में मूच्छित होकर पड़े थे । यह देख कर वृन्दादेवी की आज्ञा से कोई चतुर सहचरी व्यस्त हो-कर उदास मुख से श्री राधा जी के समीप जाकर बोलीं । हे प्रिय-सखी ! राधे कहने की बात नहीं है किन्तु है बड़ी विपत्ति । मैं यह देख कर के आई हूँ, कि माधव आहत हो गये । ऐसा सुनकर श्री राधिका मूर्च्छित की तरह बोलीं । सखी किसने किया, कैसे हुआ ? सखी ने कहा कि क्या कहूँ सखी कि आत्मयोनि की बाण वर्षा से ऐसा हुआ । सखी ने कहा कि आत्मयोनि शब्द से काम? और उसकी बाण बर्षा द्वारा । श्री राधा जी ने समझा कि आत्म योनि ब्रह्मा और उसकी बाण वर्षा द्वारा । गोवर्धन धारण के समय बज्र के समान वृष्टि धारा की बात मन में सोचकर व्यस्त समस्त भाव से चतुर सखी के साथ अभिसारिणी, भय विह्वला, श्री राधा को एकान्त बन में पाकर दर्शन स्पर्श से चैतन्य माधव,

मम हृदि कुलवाला–नीवि-विश्रंसि-वंश-
ध्वनिरुदयतु राधा पद्मिनी–राजहंसः ॥ १३ ॥
अद्योत्तुङ्ग-पयोधराद्रि-युगलं बिभ्रत्कराभ्यां निजं
त्राता गोकुलमात्मयोनि—विशिखासारैर्हतो माधवः ।
राधामित्यभिसारिणीं चतुरया सख्या भयोत्कम्पितां
लब्ध्वैकान्तबनान्तरे रतिकलाहृष्टो हरिः पातु वः ॥ १४ ॥

इति संगीतमाधवे श्रीवृन्दाबनोत्सवो
नाम प्रथमः सर्गः

द्वितीयः सर्गः

श्री राधामाधव महोत्सवः

अथ सा ब्रजभीरुरग्रतः परम—प्रेमरसावशाकृतिः ।
समुदीक्ष्य निजेश्वरीं सखीं पदमूले न्यपतत् प्रहर्षतः ॥१५॥
बदन्तु वः प्राणधनं किशोरद्वन्द्वं मुदा क्रीडति कुत्र मोहनम् ।
इत्थं समुत्कण्ठितया तयोक्ते ताः स्नेहपूर्णाः कथयाम्बभूवुः ॥ १६ ॥

अति उन्नत पयोधर युगल को अपने करद्वय से धारण करके निज गोकुल अर्थात् समस्त इन्द्रियों को सजीव करते हुए, नाना विधि बिलास रस चातुर्य, परम हृष्ट चित्त, श्री कृष्ण तुह्मारे रस को परिपुष्ट करें ॥ १४ ॥ (इति प्रथम सर्गः)

———:&:———

अनन्तर उसी पूर्वान्हमें ब्रजकिशोरी युगलकिशोर के लीला बिलास प्रेम में निमग्न होकर सन्मुख अपनी गुरु रूपा सखी एवं प्राणेश्वरी की प्रियनर्म अनेक सखियों को देखकर परमानन्द से परिपूर्ण होकर उनके चरणों में अबनत हुए ॥१५॥

हे प्राणसखीगण! अब मैं धैर्य धारण में समर्थ नहीं हूँ। आप सब कहैं कि आप के प्राण कोटि प्रियतम परम मोहन रसिक युगल

गुर्ज्जरी रागेण गीयते ॥

नील जलद रुचि-रुचिर कलेवर-राजित चम्पकदाम ।
विमल सुरेन्द्रायुध-परिवृत नव हरिमणि-मञ्जुल धाम ॥ क ॥
तीरे तपनदुहितुरविरामं खेलति मिथुनमभिराममम् ॥ ध्रु ॥
उन्मद मदन-महारस-विह्वल मोहनदिव्यकिशोरम् ।
अद्भुतरूप-विलास-चमत्कृति-सिद्ध हृदय धृति चौरम् ॥ ख ॥
वृन्दावन-नव कुञ्ज-गृहोदर दुर्ज्जय रति रण लोलम् ।
श्लिष्ट तिलक परिखण्डित मणिसर श्रमजलकलितकपोलम् ॥ ग ॥

कहां बिहार कर रहे हैं ? सखी की बात सुनकर एवं उसकी व्याकुलता देखकर सखियाँ स्नेह विगलित हृदय होकर कहने लगीं। ।१६॥

हे सखि ! हे मुग्ध प्रिय सहचरी ! हमारे प्राण प्रियतम रसिक युगल के लीला विलासादि दर्शन की यदि इच्छा मन में हो तो सुन । हमारे मनोमोहनकारी रसिक युगल यमुना पुलिन में निरन्तर क्रीड़ा करते हैं । उनकी सुन्दरता के सम्बन्ध में कहाँ तक कहूँ । नील जलधर कान्ति, श्याम शरीर में नव कनक चम्पक माला विराजमान हो रही है । एवं कभी मन में आती है कि इन्द्र धनुष परिवेष्टित नीलमणि विग्रह शोभा पा रहा हो ॥ क ॥

उन्मत्त मदन महारस में अर्थात् प्रगाढ़ सम्भोगरस में अत्यन्त विह्वल मनो मोहनकारी क्रीड़ा कौतुककारी मूर्त्तिमान् नवकिशोर स्वरूप हैं । क्षण २ में अननुभूत पूर्व रूप विलास चमत्कृति द्वारा हमारी धैर्य च्युति हो जाती है ॥ ख ॥

कभी वृन्दाबन की अभिनव निकुञ्ज कुटीर में दुर्धर्ष रतिरण में दोनों परम उन्मत्त एवं चञ्चल है । कभी चुम्बनालिङ्गन आदि में मग्न रहने के कारण दोनों के तिलक बिगलित एवं मिलित हो रहे हैं ॥ ग ॥

मिथ उपधाय लसत्कदली निभ-कोमलमूरु मुदारम् ।
स्वपिति कदापि कदापि च गुम्फति कमपि मनोहरहारम् ॥ घ ॥
चुम्बति गुप्तकथाच्छलत: क्वचिद्वलम्वित श्रुतिमूलम् ।
क्वचन परस्परमतिशय कृत रुचि परिधापयति दुकूलम् ॥ ङ ॥
क्वापि मिथ: परिमण्डति लुम्पति पश्यति निज प्रतिबिम्बम् ।
हंसमिथुनमनुयाति करोति च नटशिखियुग्म-विडम्बम् ॥ च ॥

सब मणिमय हार छिन्न भिन्न होगए हैं। रतिश्रम से उपन्न हुए स्वेद विन्दुओं से दोनों के गण्डस्थल लथपथ होरहे हैं। कभी २ कौतूहल से सुन्दरता में कदली स्तम्भ को विजय करने वाली सुकोमल जङ्घाओं का सिरहाना लगाकर दोनों शयन कर रहे हैं। कभी सुन्दर हार बनाते हैं ॥ घ ॥

अर्थात् चुम्बन, दन्ताघात एवं नखक्षत रूप रत्नमणि हार आदि दोनों के मङ्गल श्री अङ्ग में दोनों निर्माण कर परमानन्द सागर में निमग्न हो रहे हैं। कभी कोई गुप्तबात कहने के बहाने से कपोलों का परस्पर चुम्बन करते हैं। कभी विलास के अनन्तर परस्पर में अत्यन्त आग्रह करके परस्पर में वस्त्र पहिनाते हैं॥ ङ॥

कभी परस्पर में अन्योन्य नाना विध भूषणों से भूषित कर रहे हैं। कभी २ अनेक सुगन्धित द्रव्यों से दोनों दोनों के अङ्ग में लेपन करते हैं। कभी पुन: दोनों के उन्मुक्त स्वच्छ गण्डस्थल एवं वक्ष: स्थल पर गिरकर अपना प्रतिबिम्ब देखते हैं। कभी काम के वशीभूत होकर हंस हंसनी का अनुकरण अर्थात् तद्वत् विहार करते हैं। कभी मदोन्मत्त नृत्यपरायण मयूर युग्म के समान नृत्य के बहाने से बिहार करते हैं ॥ च ॥

कभी बेणी एवं अलंकारों से विभूषित होकर उद्दाम बिलास में निमग्न हो रहे हैं। और कभी अनेक प्रकार के बाजों के साथ

क्वापि परस्पर-वेणीविभूषणा रचितोद्दामविलासम् ।
गायति नृत्यति हसति विचल्गति प्रतिपद मदन विकाशम् ॥ छ ॥
क्वचन गताम्बर विलोलित कुन्तल त्रोटितमौक्तिकहारम् ।
कृत परिरम्भण-चुम्बन-शतशत यामुन तीर विहारम् ॥ ज ॥
राधा माधव केलि महोत्सव मतिरस मधुरिमसारम् ।
गायत रसिक सरस्वति वर्णित मुज्ज्वलभाव-विकारम् ॥ झ ॥
निखिल निगम दूरं प्रेममाध्वीकपूरं
न खलु भगवदीये क्वापि लब्धोपलम्भम् ।

गान नृत्य में निमग्न हो रहे हैं। कभी क्षण २ मदनमहाराज के प्रभाव से परस्पर परस्पर को पराभव की इच्छा से स्पर्धा कर रहे है। गाते नाचते हंसते फिरते रहते हैं ॥ छ ॥

कभी महा-उन्मत्त विलास सम्भार में अङ्ग के वस्त्र उड़ रहे हैं। दोनों के केश कलाप अस्त व्यस्त हो रहे हैं। मणिमय हार सकल छिन्न भिन्न हो रहे हैं। इसी अवस्था में आलिङ्गन एवं सौ सौ वार चुम्बनादि करते हुए युगल किशोर यमुनापुलिन में विहार कर रहे हैं ॥ ज ॥

श्री प्रबोधानन्द सरस्वती पाद रचित, उन्नत उज्वल भाव युक्त श्री राधामाधव के विलास महोत्सव रूप का माधुर्य निर्यास रसिक भक्त गण गान करते हुए अर्थात् आस्वाद करते हुए परम रस में निमग्न हों ॥ झ ॥

सकल वेद और उपनिषदों के पार अर्थात् अगोचर, प्रेम मदिरा परिपूर्ण किन्हीं भगवदवतारादि में अलभ्य, अथवा इस विलासी युगल में किसी प्रकार भगवद् बुद्धि होने पर अलभ्य, कनक जटित नीलमणि सदृश, परमानन्द के आकर एवं अति प्रसिद्ध परम मधुर विग्रह युगल इस बृन्दावन में शोभा पा रहे हैं विहार कर रहे हैं ॥ १७ ॥

तदति मधुरधाम द्वन्द्वमानन्द कन्दं
कनक मरकताभं भाति वृन्दावनेऽस्मिन् ॥ १७ ॥
प्रथम मुरलीरन्ध्रे रञ्जिताकुञ्चि-बिम्बा-
धरमिह सखि राधां भाति गायन्मुरारिः ।
इतरबिबरचञ्चच्चारु मृद्वङ्गुलीनां,
नख मणि-रुचि-बीचि मुद्रिकालिच्छटाभिः ॥१८॥
श्रुत्वा राधा मधुपति-महानन्द साम्राज्य सारो
दारस्फारामृत रसमयानङ्ग लीला-बिहारम् ।
तृप्तिं नैव ब्रजमृगदृशः प्राप्य सप्रेम भूयः
श्रीराधायाश्चरितममृतं पृच्छमाना जगु स्ताः ॥१९॥

॥ भैरवी रागेण गीयते ॥

राधा विलसति सह मधुरिपुणा ।
नव नव रतिरस केलिषु निपुणा ॥ ध्रु० ॥

हे सखि ! ध्यान से देख ! वंशी के प्रथम छिद्र में सुरञ्जित तथा थोड़ा कुञ्चित बिम्बाधर रखकर अन्य समस्त छिद्रों में चञ्चल कोमल मनोहर अँगुलियों की नख मणि छटा से, एवं सब अँगुलियों की कान्ति तरङ्ग विस्तार कर "राधा" नाम गान करते २ मुरारि श्यामसुन्दर बेश में शोभा पा रहे हैं ॥ १८ ॥

श्री राधा माधव के परमानन्द साम्राज का सार अति महान् और विस्तृत सुधारसमय महा मन्मथ जनित केलि बिलास काश्रवण कर अत्यन्ताकाङ्क्षा के बशीभूत तृप्ति न पाकर वे पुनः प्रश्न करने लगे । मृग नयनी राधा की सखियां प्रेम में विभोर होकर श्री राधिका के परमामृतमय चरित्र गान करने लगीं ॥ १९ ॥

हे सखी ! क्षण क्षण में नवनबायमान बिलासरस बिदग्धा श्री राधिका जी राधापद्म मधुकर श्रीगोविन्द के सहित अति अद्भुत रूप में विलास कर रही हैं । इन सब बातों को कहाँ तक कहूँ

अभिमतमनु प्रति कूलक चरिता ।
खेदमिवाभजदति सुख भरिता ॥ (क)
किमपि मृषा भय वेपथु वलिता ।
भवति रसज्ञभुजान्तर मिलिता ॥ (ख)
रमणमहैतुक रोषण हृदया ।
क्षिपति चलति कतिपदमथ सदया ॥ (ग)
मधु मारुत-हृत-निज तनु वसना ।
भवति दयित-पीताम्बर-वसना ॥ (घ)

किन्तु कुछ सामन्य कहती हूँ सुनो ! अभिमत संगमादि में अपनी अभिलाषा का प्रकाश करते २ प्रणय कोप से उसी समय प्रतिकूल स्वभाव, अन्तर में अत्यन्त सुख परिपूर्ण किन्तु वाह्य में मानों महाखेद प्रकाश कर रही हैं ॥ क ॥

किसी समय कोई भय का कारण न होने पर भी श्री राधा मिथ्याभय का भान कर कांपती हुई व्यस्त समस्त भाव में रसमय नागरेन्द्र को कोमल भुजाओं से वेष्टित करती हैं ॥ख॥

यद्यपि कभी किसी प्रकार कोई कारण नहीं है तथापि प्रणय कोप के पर वश होकर प्राणवल्लभकी अनेक रूप निन्दा करती हैं एवं दो चार पग चल कर पुनः प्रसन्न हो जातीं हैं ॥ ग ॥

विलासरस विशेष में कभी अपने धारन किए हुए नील वस्त्रों को खोल कर यह प्रदर्शित करती हैं कि मानों मलय पवन के द्वारा वस्त्र उड़रहे हैं अत व्यस्त समस्त भाव में प्रियतम के पीताम्बर से आप आच्छादित होती हैं । अथवा दयित पीताम्बर श्रीश्याम सुन्दर द्वारा आलिङ्गित होरही ही हैं ॥ घ ॥

वृक्षकी शाखामें झूलती लताको देखकर उद्दीपनके वशी भूत हो उन्मत्त भावसे प्राणवल्लभ कृत अभिनव हिंडोले को ग्रहण कर झूलती हैं । "नवहिंडोले" से वृक्षान्तरस वा जघनान्तरस्थ झूला लक्षित किया गया है । (ङ)

तरुविटपार्पितवञ्जरिकलिता ॥ प्रियकृतहिन्दोलनमव चलिता ॥
प्रियकुसुमादिकयाचन-चरिता । पुनरुपनत मनु हेलन-निरता ॥
कुच मकरी लिखने मदतरमा ।
प्रियमवतुर इति निन्दति सहसा ॥ (छ)
श्रुति रस-भरित-सरस्वति-भणिता ।
मुदमुपयातु परामिह जनतां ॥ (ज)
अहो-मुखर नूपुर प्रकर-किङ्किणी-डिण्डिम-
स्वनादि वरताडनै र्नखर-दन्त घातै र्युतः ।
सुदुद्धरमदान्धयो र्नवनिकुञ्जपुञ्जजिरे,
तदद्भुत किशोरयोः सुरतसङ्गरो जृम्भते ॥ २० ॥
तदाश्चर्य्यं प्राणाधिक-दयितयोः केलिविभवं
निलीनाः पश्यन्त्योऽभयमपि रसाम्भोधि-पतिताः ।
क्षणादभ्यासन्नाः पदकमल-सम्वाहन पराः
प्रियं तत् संवीज्य द्वयमहह भूय समुदिताः ॥ २१ ॥

प्राणवल्लभके निकट आप नाना प्रकार के पुष्पों की चाहना प्रकट करती हैं पुनः श्रीश्याम सुन्दर के द्वारा उन पुष्पों को लाते हुए देखकर प्रणयकोप से उपेक्षित सी हो जाती हैं ॥ च ॥

किसी समय अपने वक्षोज युगल पर मकर मञ्जरी के चित्रण के समय प्रसन्नता से हंसते हुए मुख से प्राणवल्लभको अचतुर कह कर निन्दा करती हैं। (छ)

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती पाद रचित इस श्रवण मन रसायन गीतिका के आस्वादन में रसिक भक्तगण, इस समयमें अथवा इस गीत काव्यमें परम आनन्द प्राप्त करें। (ज)

हे सखी ! ध्यान से देख, अभिनव निकुञ्ज समूह परिवेष्टित निभृत निकुञ्ज में सुदुर्वार मदन मदमें अन्धहैं अतएव अपनी २ देहस्मृति से रहित, अभूतपूर्व शोभा शाली नव किशोर युगल के अनुभव से रहित आश्चर्य रूप से शब्दायमान नूपुर,

यदि त्वमिन्दीवरसुन्दराक्षि दिदृक्षसे नः प्रियर्यो विलासं।
सर्वात्मना प्रेमरसेन राधा-पदारविन्दं स्मर तद्रसौघम् ॥ (२२)
अथ सा मृगशावलोचना, धृत-राधापद दस्यलालसा ।
सरसं निजजीवितेश्वरी-चरणध्यानपरेदमुज्जगौ ॥ २३ ॥

। बसन्तरागेण गीयते ।

बरसीमन्त-रसामृत-सरणी-धृत-सिन्दूर- -सुरेखां ।
श्रीवृषभानुकुलाम्बुधि-सम्भव-सुभगसुधाकरलेखाम् ॥ (क)
स्फुरतु मनो मन निरवधि राधाम् ।
मधुपति रूप गुण श्रवणोदित-सहज मनोभव-बाधाम् ॥ ध्रु ॥
सुरुचिर कवरी विराजत कोमल-परिमल-मल्लिसुमालां ।
मदचल खञ्जन-खेलन गञ्जन लोचन कमलविशालम् ॥ (ख)

किंकिणी डिंडिम एवं प्रखर नखर दन्ताघात युक्त सुदुर्धर्ष उद्दाम रति केलि संग्राम क्रमतः आभवृद्ध होरही है ॥२०॥

सखीगण अति अनिर्वचनीय परमविस्मयकारी मदन मद विमुग्ध कोटिप्राण सर्वस्व प्रियतम युगल के अपूर्व विलास वैभव को लताजालमें छिपकर दर्शन करती हुई रस सागर में निमग्न हुईं। एक क्षण पश्चात् साहस कर के दोनों के समीप जाकर कुछ काल वीजन चलाकर चरण सम्वाहन पूर्वक युगलकिशोर के आनन्दभङ्ग के भय से पुनः उसी नव सखी के समीप चली गईं ॥२१॥

अनन्तर श्रीराधाकी प्रियसखीगण के इस प्रकार उपदेशपूर्ण परमरस मय वाक्य श्रवण कर मृगके बच्चे की तरह अत्यन्त चञ्चल नेत्रवाली वही नव सखी श्रीराधा के चरण दास्य के प्रति विशेष लालसान्वित होकर विगलित हृदय से कातर प्राण से अपनी जीवितेश्वरी श्रीगुरु रूपा सखी के चरणकमलका ध्यान करते २ उच्च कण्ठ से इस पद को गाने लगी।२२।

हे परम सुन्दर कमल नयनी प्रिय सखी ! यदि तुम हमारे

मद करिराज-विराजदनूत्तम-चलित ललित गति भंगीं ।
अति सुकुमार-कनक नव चम्पक गौरमधर मधुरांगीम् । (ग)
मणि केयूर ललितवलया वलि मण्डितमृदुभुजबल्लीं ।
प्रतिपदमद्भुत रूप चमत्कृति मोहन युवती मतल्लीम् । (घ)

प्राण प्रियतम श्रीराधागोविंद के परम निगूढ विलास दर्शन करने की इच्छा करती हो तो परम अनुराग मय काय मनो वाक्य द्वारा महाभाव स्वरूपिणी परम रसमयी श्री राधारानी के श्रीचरण कमल युगल का आश्रय ग्रहण करो ॥२३॥

हमारा मन अन्य चिन्ताओं को त्याग कर असीम रूप गुण लीला बिलासिनी श्रीराधाजी को स्मरन करे। किसी प्रकार श्री कृष्ण की रूप गुण लीला आदि के सुनने मात्र से श्री कृष्ण-मयी परम अनुरागवती के हृदय में स्वाभाविक मनसिज पीड़ा उत्पन्न होती है। जिनकी सिन्दूर भरी मांग को देख कर मन में ऐसा प्रतीत होता है कि यह मांग नहीं अपितु रस सुधाकी प्रशस्त रास्ता में मनोहर एक सुन्दर सिन्दूर की रेखा शोभा पा रही है। जो कि वृषभानुजी के बंशरूप सुधासारोत्पन्न सुन्दर चन्द्रकला सदृश है (क)

अति मनोहर केशकलाप में रसमय नागरेन्द्र द्वारा निर्मित कुछ खिले हुए सुगन्ध युक्त चमेली के फूलों की माला सुशोभित होरही है। मदमत्त चञ्चल नट गञ्जन मञ्जन कारी एवं आकर्ण विरतीर्ण नयन कमल हैं। (ख)

जिनकी मनोहर गति भङ्गि देखकर मदमत्तगजराज की अतिउत्तम गतिभी तुच्छ प्रतीत होती है, जिनकी अङ्गकान्ति अभिनव विकसित मनोहर स्वर्ण चम्पक की कान्ति से अधिक परम मधुर गौर वर्ण है। (ग)

जिनके भुजयुगल में मणिखचित अङ्गद (बाजू) एवं

मृदु मृदु हास ललित मुखमण्डल कृत शशिबिम्ब बिडम्वां ।
किङ्किणिजाल-खचित-पृथुसुन्दर-नवरसराशि नितम्बाम् । (ङ)
चित्रित-कञ्चुलिका-स्थगितोद्भट-कुचहाटकघटशोभां ।
स्फुरदरुणाधरम्बादुसुधारस--कृत-हरि-मानसलोभाम् ॥ (च)
सुन्दर-चिबुक-विराजित-मोहन-मेचक-बिन्दुविलासां ।
सकनकरत्नखचित पृथुमौक्तिक-रुचिरुचिरोज्वलनासाम् । (छ)
उज्वलराग रसामृत-सागर-सारतनुं सुखरूपां ॥
नवनवायमानसहजसुंदर रुचि रुचिरवरभूषां ॥ ज ॥

मनोहर कङ्कला आदि शोभा पा रहे हैं । क्षण क्षण में नव नवा-यमान अद्भुत रूप गुण लीला चमत्कृति शालिनी श्री किशोरी जी कृष्ण प्रेयसीगण में शिरोमणि स्वरूप हैं ।।घ।।

जिनकी मृदु २ हास्य युक्त मनोहर मुखमण्डल की कान्ति शरद के पूर्ण चन्द्र की शोभा को भी तिरस्कृत करती है । रसमय नागर की जीवन मूरि स्वरूप परम सुन्दर नव रसमय अतिस्थूल नितम्ब देश में किंकिणी जाल धारण होरहा है ।।ङ।।

जिनके बक्षःस्थल में बिचित्र मणि जटित कञ्चुकी से आच्छन्न तुङ्गस्तन रूपी स्वर्ण घट द्वय सुशोभित हो रहे हैं । किसी रसमय समय में ईषत्‌कम्पित अरूणवर्ण अधरोष्ठ की सुधारस परिपूर्ण अवस्था देखकर मदनमोहन का मन भी अति लोभ के वशीभूत हो जाता है ।।च।।

जिनके मनोहर चिवुक में मोहन के मन को मोहित करने वाली कस्तूरी की बेंदी शोभा पारही है । अति उज्वल नासिका के अग्र भाग में सुवर्ण जटित नीलमणि खचित स्थूल गज मुक्ता झलमलाय रहा है । (छ)

परमोज्वल अनुरागरसामृत सिन्धु के रत्नस्वरूप अर्थात् मादन नामक महाभाव स्वरूपिणी एवं परम सुखमयी, जिनके

नूपुरहार–मनोहर कुण्डल-कारुचिमरुणदुकूलाम् ।
पथि पथि मदन मदाकुल-गोकुलचन्द्र-कलितपदमूलाम् । (झ)
रसिक सरस्वति-गीतमहाद्भुत राधारूपरहस्यं ।
बृन्दाबनरसलालस-मनसाभिदमुपगेयमवश्यम् । (ञ)
सुभगशिखरलक्ष्मीकोटिकाम्यैकपादा
धृतनखमणिचंद्रज्योतिरामोदमात्रा ।
अति मधुरचरित्रानङ्गलीला-विलासा
मम हृदि रसमूर्तिः स्फूर्तिमायातु राधा ॥ २४ ॥
नवरसमद-घूर्णन्माधवप्राणको टि—
प्रियनखमणिशोभा सर्व्वसौभाग्यभूमिः ।

मनोहर नाभिरूप अमृत रस के कूप में श्यामसुन्दर का मन रूपी मुग्धमृग सदा निपतित रहता है। (ज)

अपनी लावण्यमयी छटा से रत्न जटित नूपुर, मणिमय हार एवं कुण्डल आदि भूषणों को उज्वल कर रही हैं । अरुण वसन धारिणी को पाकर निकुञ्ज बीथियों में मदन मद व्याकुल मदनमोहन किसी रस विशेष के लोभ में जिनके चरण तल में वार वार निपतित होरहे हैं ॥झ॥

वृन्दाबन के अति मधुर रसलोभी भक्तगण परमरसिक श्री प्रवोधानन्द सरस्वती पाद बिरचित श्री राधिका के रूपरस एवं अति निगूढ़ रहस्य पूर्ण इस गीतिका का आस्वादन करके अवश्य ही परमानन्द सागर में निमग्न होंगे ॥ञ॥

कोटि कोटि सौभाग्य शिखर लक्ष्मी जिनके चरण की एक नखमणिचंद्र कान्ति की इच्छा करती है वही ल्हादिनी साररूपा, अतिसुमधुरस्वभावा, रसमूर्ति एवं मन्मथ लीला विलास निमग्ना श्री राधा हमारे हृदय में सदा स्फूर्ति प्राप्त करें ॥ २४ ॥

स्फुरतु हृदि सदा मे कापि काश्मीररोचि—
र्व्रजनागरकिशोरीवृन्दसी मन्त–भूषा ॥ २५ ॥
गोविन्द-प्राण-सर्व्वस्व-नखचन्द्रैकचन्द्रिका ।
कापि प्रेमरसोदारा किशोरी मम जीवनम् ॥ २६ ॥
चेतः कामपि कुन्दसुन्दरसुधा-निःस्यन्दि-मन्दस्मित-
ज्योतिर्मोहन-बक्तचन्द्र—विगलत् प्रेमामृताम्भोनिधिं ।
प्रत्यंगोच्छलितानुराग-सहजानङ्गोत्सवैकावधिं
श्रीवृन्दावनचन्द्रदुर्मदमनश्चौरीं किशोरीं स्मर ॥ २७ ॥
मुक्तादामनि न प्रसारय करं दामोदर स्त्वं यतो
नो पीताम्बर ! शम्बरारि—सुभगस्त्वं मे गृहणाम्बरं ।

जिनकी पदनखमणि शोभा भी रतिरसमद में विह्वल रसिक मुकुट मणि श्री कृष्ण को प्राणकोटि से भी प्रियतम हैं । अतएव जो सब प्रकार शोभा की आश्रय स्वरूपा, व्रजवासिनी परमरसिका किशोरीगण की शिरोरत्न स्वरूपा, कुंकुम गौरांगी अनिर्वचनीय रूप गुण माधुर्य शालिनी रसमयी श्री राधा हमारे चित्त में बिहार करें ॥ २५ ॥

एक एक नख चन्द्र ज्योत्सा भी सर्वेन्द्रियाल्हादकारिणी श्री गोविंद के प्राण सर्वस्व, प्रेमरस से परम विदग्धा अनिर्वचनीया नव किशोरी हमारी एकमात्र जीवन मूरि हैं ॥ २६ ॥

रे मन ! कुन्द कुसुम से भी सुन्दर शुभ्र अमृतरस स्रावी मृदुमधुर मुसकान (हास) की छटा से मनो मोहन कारी जिनका बदन चन्द्र से भी अधिकतम प्रेमामृत सागर स्रवित होरहा है । जिनके अङ्ग प्रत्यङ्ग से उत्थित अनुराग रूप सहज मदन महोत्सब की एक मात्र अवधिस्वरूपा एवं श्री वृन्दावन चन्द्र नागरेन्द्र के दुर्दमनीय मनोहारिणी बाक्य मन से अगोचर किसी किशोरी मणि का स्मरण कर ॥ २७ ॥

हस्तं न स्तनयो र्निधेहि यमजौ भग्नौ सुतुङ्गौ यतो
राधाया इति वाग्विभंगि-बिततस्मेरो हरिः पातु वः ॥
इति श्री सङ्गीतमाधवे श्रीराधामाधवमहोत्सवो नाम
द्वितीयः सर्गः ॥

—तृतीयः सर्गः—

॥ श्री श्री राधादास्यमहोत्सवः ॥

अथ निज रसधाराकन्द-गोविंदराधा-
मधुर मधुर हास प्रस्फुरद्वक्त्र चन्द्रम् ।

हे प्राणवल्लभ ! तुम नीविदाम बद्धोदर हो अतः हमारी मोती की बहुमूल्य लड़ी हाथ मत फैलाना, हे पीताम्बर ! तुम काम विवश हो अतः हमारे वस्त्र मत हरण करना, तुमने अति उच्चयमलार्जुनवृक्ष भग्न किए अतः हमारे उत्तुङ्गस्तन युगल पर हस्त अर्पण मत करना, श्री राधा के इस प्रकार श्लेष वाक्यों से परम प्रसन्न हंसते हुए श्री कृष्ण दर्शनादि देकर आप लोगों को परमानन्दित करें ।

यह पद्य ग्रन्थकारका आशीर्वादात्मक है--इसमें प्राणेश्वरी श्री राधारानी की हृदयगत अन्तर अभिलाषा प्रकाशित हुई है। हे प्राण बल्लभ ! जबकि आप दामोदर हैं तो क्या हमारे मुक्ता दाम में हस्तार्पण नहीं करेंगे ? उत्तङ्ग स्तनों पर हस्तार्पण नहीं करेंगे? केवल कन्याओं के वस्त्र हरण किये यही नहीं किन्तु हमारे भी वस्त्र हरण किये अतः हमारे वस्त्र हरण करें इत्यादि ॥ २८ ॥

तदनन्तर श्रीराधारानी की नर्म सखीगण ने देखा कि वही नव सखी लीलामय युगल किशोर की जितनी लीलाओं का श्रवण करती है उतनी नव अनुराग भार से उसकी प्यास अधिक बढ़ कर उसे अधीर करती है परम मनोहर माधुर्यरस प्रवाह

दिशि दिशि परिचेतुं सञ्चरद् क्-चकोरीं
कलित-पुरुतृपन्तीं दर्शयन्त्यो जगुस्ताः ॥ २६ ॥

॥ मालव गौडरागेण गीयते ॥

मृगमदलिप्तरुचिरवपुषा परिरञ्जित नवघन सारं ।
वेणीभुजङ्गी विराजितया शिखिचन्द्रक चूडमुदारम् ॥ क ॥
सखि हे गोकुल-राजकुमारम् ।
राधिकया सह कलय मनोज-रसाधिकया सुकुमारम् ॥ध्रु० ॥
नव-चपलाचपलाङ्गरुचा रसवर्षण-वारिद जालं ।
काञ्चन वल्लरिकोज्ज्वलया द्युतिनिर्जित-नीलतमालम् ॥ ख ॥

का मूल आश्रय स्वरूप श्री गोविन्द के सहित श्रीराधा के मधुर से भी सुमधुर हास परिहासादि द्वारा सुप्रसन्न मुखचन्द्र दर्शन के लिये उनकी नयन चकोरी चञ्चल भाव में चारों ओर परिभ्रमण कर रही हैं। यह देखकर स्नेह विगलित चित्त से युगल किशोर के नाना चातुर्य पूर्ण विलास दर्शन कराते कराते गाने लगीं ॥ २६ ॥

हे सखी ! नव मन्मथरस से परिपूर्ण श्रीराधा जी के सहित अति सुकुमार नन्दराज कुमार को एक बार देख। कस्तूरी-का लिप्त श्री अङ्ग श्रीराधिका के सहित चन्दन परि शोभित नव जलधर कान्ति श्यामसुन्दर के मिलन में कैसी अभूत पूर्व शोभा हो रही है। (क)

विलास में विभोर इतस्ततः चलायमान वेणी भुजङ्गी शोभिता श्रीराधा के सहित अति मनोहर मोर मुकुट धारी, ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो स्थिर सौदामिनी जयिनी अङ्ग कांति के साथ रसवर्षी नवघन। उज्वल कनकलता के साथ नीलतमाल विजयी कांति धारी। (ख)

अनिल तरल-नलिनी सुललितया मदकल-मधुकर लीलं ।
अभिनव सङ्गम भय कम्पितया बहुविध मनुनयशीलम् ॥ ग ॥
कोटि परमरति शोभनयाद्भुत नव कन्दर्प विलासं ।
स्मेर सरसकुमुदिनी-प्रमुदितया शरदमृतांशुप्रकाशम् ॥ घ ॥
वरकरिणीमद विह्वलया नवरतिरसमत्त करीन्द्रं ।
अद्भुत केलि विचक्षणया स्मरतंत्रमहानिपुणेन्द्रम् ॥ ङ ॥
उज्ज्वल प्रेम रसामृत घनया परमसुखाम्बुधिसारं ।
अद्भुत हाटक पुत्रिकया नवमरकत मूर्ति विहारम् ॥ च ॥
नवतारुण्य निवेश मधुरया मोहन दिव्यकिशोरं ।
अरुण दुकूल बिराजितया मृदुकुञ्चित पीत निचोलम् ॥ छ ॥

मलय पवन से चलायमान कनक कमलिनी से भी मनोहारिणी के साथ जैसे सौरभ मदमत्त एवं गुञ्जार करता हुआ लीला कारी भ्रमर शोभित हो। क्षण २ नव २ सम्प्रयोग भय से कम्पिता के साथ नाना अनुनय परायण। (ग)

कोटि कोटि विलासिता पूर्ण बिलासशालिनी के साथ विलासी नवीन मदन के समान, मृदुमधुर हास युक्त सरस कुमुदिनी से भी सरस प्रफुल्लित के साथ शारदी पूर्णिमा के चन्द्र सम ॥ घ ॥

मदविह्वल श्रेष्ठ करिणी के साथ विलास रसोन्मत्त गजराज के समान अपरूप केलि बिचक्षणा के सहित कामशास्त्र कला विदग्ध के सम ॥ ङ ॥

मादनाख्य महाभावरूपिणी के साथ परम सुख सागर के रत्न के समान, अनिर्वचनीय स्वर्ण प्रतिमा के सहित विलास शील नव नीलमणि मूर्ति सम ॥ च ॥

परममधुर नव किशोरी के साथ मनोमोहन क्रीड़ा परायण

कृतपणबन्धन खेलनया जितवाद-हृत-स्तनचेलं ।
बहुविध हास विलास निपुणया प्रतिपदमद्भुतखेलम् ॥ ज ॥
राधामाधव-रूप कलोदर्यमिति शृणु चाति मनोज्ञं ।
मुदित सरस्वति गीत महो कुरु हृदयमिहातिरसज्ञम् ॥ झ ॥
नव परिमल-मल्लीदामधम्मिल भारां
कुचकलस विराजत् कञ्चुलीतार हाराम् ।
दिशि दिशि रसधारामाकिरन्तीमपारां ।
मधुरतर बिहारां पश्य राधामुदाराम् ॥ ३० ॥
वाले! विलोकय किशोर मनङ्गलीला—
खेलायमान-मदशोण विलोचनाब्जं ।

नब किशोर, अरुणवसन परिशोभिता के सहित मृदुकुञ्चित पीताम्बर धारी ॥ छ ॥

पणबन्ध (होड़) में आकांक्षादि क्रीड़ापरायणा के साथ मिथ्या जय विवाद में कञ्चुकी हरण परायण, अनेक हास्य परिहास विलासादि निपुणा के साथ क्षण क्षण नव नव क्रीड़ा परायण ॥ ज ॥

हे रसिक भक्तगण ! आनन्दित सरस्वती पाद विरचित अति विस्मय कारी श्रीराधामाधव के रूप गुण विलासयुक्त परम मनोहर इस गीत को सुनकर हृदय को अति रसाल करो ॥ झ ॥

हे सखी ! अभिनव सौरभ युक्त मल्लिका माला से सुशोभित बेणी एवं उन्नत वक्षोजयुगल पर कञ्चुकी तथा परम उज्वल मणिमय हार शोभा पारहे हैं ! दसों दिशाओं में अपार असीम रस प्रवाह विस्तार करने वाली मधुर से भी मधुरतम विलास परायणा मनोमोहिनी श्रीराधा के दर्शन कर ॥ ३० ॥

हे मुग्धे ! अनङ्गलीलारङ्ग रस में घूर्णायमान मद के भार

सर्वाङ्ग मुल्लसित मुत्पुलकं दधानं
राधांग सङ्ग रसरङ्ग तरङ्ग लोलम् ॥ ३१ ॥
शोभासिन्दुरविन्दोः क्वचन नवनखोल्लेखलक्ष्मा परत्र
व्यक्ता काश्मीरमुद्रा क्वचिदपि ललितः कुत्रचित् कज्जलाङ्कः।
कुत्रापि भ्राजमाणः मणिवलयघटाचिन्हमित्थं दधानः
साक्षादेवैष राधा सुरत रस महो वीक्ष्यतां श्याम धामा ॥ ३२ ॥
अये कोऽयं चन्द्रः सकथमिह वा श्यामलतर
स्तमालोऽयं नासौ वदति ललितं वा न चलति।

में रक्त नयन-कमल युक्त रस से उत्फुल एवं पुलकान्वित अङ्ग-प्रत्यङ्ग शाली श्री राधा के मङ्गल श्रीअङ्गादि सङ्ग रूप रस तरङ्गाघात में परम चञ्चल ब्रज नव किशोर का अवलोकन कर ॥ ३१ ॥

हे सखी! क्या कहूँ श्रीराधा के मूर्तिमान सम्भोग रसोत्सव स्वरूप सन्मुखवर्ती इन श्यामसुन्दर को एक बार नयन भरके देख। कैसा आश्चर्य है यह देख किसी अङ्ग में श्री राधा के मस्तक की सिन्दूर वेंदी का चिन्ह कैसा शोभित है, पुनः अन्य अङ्गों में कैसे अभिनव नख क्षत हो रहे हैं, किसी अङ्ग में अति सुस्पष्ट रूप श्रीराधा के वक्षोज युगल का कुंकुम चिन्ह और किसी अङ्ग में श्रीराधा के नेत्र कज्जल का चिन्ह एवं किसी अङ्ग में परम शोभा सम्पन्न मणि वलय प्रभृति का चिन्ह धारण हो रहा है ॥ ३२ ॥

वह पूर्वोक्ता ब्रज नवबाला ब्रज नव मधुकर श्यामसुन्दर के दर्शन से विमुग्ध होकर मनमें तर्क करती है कि यह जो दीख रहा है यह क्या है चन्द्र? नहीं नहीं चन्द्र होता तो बृन्दाबन भूमि में कैसे विचरण करता? तब क्या निविड श्यामवर्ण तमाल है? नहीं नहीं तमाल तो मनोहर बोलता नहीं एवं इतस्ततः भ्रमण भी नहीं करता। तब क्या यह नव जलधर है! यह भी

नवाम्भोधः कस्माद् भवतु रसदः शारद-निशा-
मतिर्वा मुग्धाभून् मधुपति-मुदीक्ष्य व्रजबधूः ॥ ३३ ॥
अनंगस्य प्राणाः किमु हृदयमेतन्मधुपते
र्महालावण्यानामपि परमबीजं विजयते।
रसश्रीर्वा साक्षान्मधुर-मधुर-प्रेम-विभवे
त्यतर्क्यां श्रीराधां कमलनयनां तर्कयति सा ॥ ३४ ॥
द्विधाभूतमिव प्राणसाररत्नं बहिः स्थितं।
किशोरमिथुनं दृष्ट्वा सा मग्ना प्रेमसागरे ॥ ३५ ॥
महाप्रीतिरसानन्द-गलद्बाष्प-विलोचना।
गिरा गद्गदया प्राह बन्दमाना निजेश्वरीम् ॥ ३६ ॥

सम्भव नहीं क्योंकि मेघ सदा जल बरसाता है। तब तो यह शरद् का निष्कलङ्क चन्द्र है क्या ? ॥ ३३ ॥

मन वाणी से अगोचर, पङ्कज नयनी श्रीराधा के दर्शन करती पुनः विचार करती हैं कि यह मन्मथ चक्रवर्ती की प्राण स्वरूपा हैं, अथवा मधुसूदन का हृदय सर्वस्व ? किंवा महा-लावण्य समुदाय का बीज ? वा मूर्तिमती रसलक्ष्मी ? अथवा परम मधुर उज्वल प्रेमसम्पत्ति श्रीवृन्दावन में विराज रहीं हैं। ३४

द्विधा विभक्त होकर भी जो बाहिर रहते हुए कोटि कोटि प्राणों का साररत्न स्वरूप रसमय नव किशोर युगल के दर्शन कर के वह नव सखी एक बार प्रेम सागर में डूब गई ॥ ३५ ॥

क्षणानन्तर कुछ प्रकृतिस्थ होकर महाप्रेमरसानन्द में गलदश्रु नयन होकर वह नव सखी, निज गुरुरूपा सखी की चरण युगल बन्दना कर प्रेम-गद्गद वाक्य से प्रार्थना करती है ॥ ३६ ॥

।। रामक्रिरीरागेण गीयते ।।

शिक्षय मामनुपम--निज कल्पित—सङ्गीतक बहुभङ्गीम् ।
हरिमुपगायय यथा भवतीमहमीक्षे घनपुलकाङ्गीम् । (क)
वन्दे भवतीमतुलरसराशि ।
वृन्दारण्य निकुञ्ज विलासिनि ! कुरु मां निजपददासीम् ।। ध्रु० ।।
कारय निजनागरचरणद्वयपरिचरणं सुखसारं ।।
परिचारय हरिणाक्षि नवं नवमभिनवकुञ्जमुदारम ।। ख ।।
विरचितकुसुमशयन मनुकारय मधुरमुखेन निदेशं ।
सम्वाहय ललिताङ्गि ! मया निजपदमवबन्धय केशम्- ।। ग ।।

विहारिणी ! मुझे अपने निज चरणों की दासी बनाओ। निज विरचित एवं अन्तरङ्ग भाव युक्त, अति उत्तम संगीत की वहुविध भावभङ्गि कृपाकर मुझे सिखाइये (श्री गुरुरूपा सखी भी श्रीराधा सखीगण के आदेशानुसार ही श्रीराधा दास्य अङ्गीकार करती हैं अतः स्वातन्त्र्य दोष यहाँ पर नहीं है) इस रूप भाव में कृष्ण-गुणगान का उपदेश दीजिए जिससे परमानन्द में विभोर होकर आपके सर्वाङ्ग घनपुलक में परिव्याप्त हो जाउँ ।। क ।।

मेरे द्वारा परम सुखमय आप के प्राणवल्लभ के सुकोमल चरण युगल की परिचर्या कराइये । हे मृग नयनी । अत्यन्त प्रशस्त अभिनव निर्भत निकुञ्ज की मुझसे नव २ भाव में परिचर्या करा लीजिए ।। ख ।।

सखियों के द्वारा विरचित कुसुम शय्या देख कर परिपाटी के साथ पुनः संस्कार के लिए अपने श्रीमुख से आदेश करें । हे मनोहराङ्गि ! हमारे द्वारा निज पादसम्बाहन एवं केशबन्धन कराइये ।। ग ।।

नवताम्बूल सुचर्व्वितमभिमतमाननचन्द्रविगीर्णं ।
सृक्वणिगलितमहं स्पृहये तव कृपया किमपि वितीर्णम् (घ)
तव प्रियश्यामकिशोररसोत्सवमनिशमनन्तमपारं ।
अनुभवितास्मि भवत्पदपंकज-किंकरिकै रससारम् ॥ ङ ॥
मम कलयात्म-चरण-महिमोदित बहुचतुरायित रीतिं ।
मेलयितास्मि कदा निशि वा हरिणा भवतीं गतभीतिम् ॥ (च)
अयि नवरसिकयुवति-कुलमण्डन-पदनखचन्द्रविलासे ।
आर्त्तजने मयि नहि विमुखीभव निजपददास्यधृताशे (छ)

हे करुणामयी ! आपके निज अभिलषित रसमय नागरेन्द्र चन्द्रका मुखोद्गीर्ण चर्वित ताम्बूल रस आपके अधरोष्ठप्रान्त से गिरते हुए में से उसकी एक विन्दु के लिए मैं प्रार्थना करती हूँ ॥ घ ॥

अपार अनन्त पारावार रहित रस निर्यास में आपके प्राण कोटिसर्वस्व श्याम नव किशोर के परिपूर्णतम सम्भोग रस चातुर्य आपकी पादपद्म दासीप्रिय नर्म सहचरियों के साथ मैं भी निरन्तर रसास्वादन कर सकूं ऐसी कृपा करें ॥ ङ ॥

हे देवि ! आपकी श्रीचरण महिमा से उत्थित अर्थात् निज अभिसारादि विषयक समस्त चातुर्य प्रकारों को दया कर के मुझे सिखा दीजिये । हे लीलामयी ! रात्रि में नव अनुराग के बलपर गुरुजनों से निर्भीक होकर आपको साथ ले कर कब श्रीकृष्ण के साथ सङ्गम कराऊँगी ॥ च ॥

हे स्वामिनी ! नव नव रसिक युवतीगण आपकी श्रीचरणनखचन्द्र ज्योत्स्ना को अपना भूषण मानती हैं । क्योंकि आप हैं महिमामयी अतः आपका श्रीचरण दासीत्व ही एकमात्र प्रार्थनीय है । अतिशय कातरा मेरे प्रति आप विमुख न होंगी ॥ छ ॥

इति वृषभानुसुताचरणाम्बुज-निपतितवरतनुगीतं ।
तद्रसलुब्धसरस्वति-वर्णित-मतिसुखदं श्रुतिपीतम ॥ (ज)

अतिरसमदवृन्दारण्यचन्द्रेण शश्वत्
पुलकितभुजदण्डेनाङ्कमारोप्यमाणे ।
अयि नवसुकुमारस्फारलावण्यमूर्त्तो !
रसमयि मयि राधे स्निग्धदृष्टिं विधेहि ॥३७॥

अथ सहज विवृद्ध स्नेहवाष्पाकुलाद्या,
ललित-ललित मूर्त्या राधयालिङ्गताङ्गी ।
निजरमणपदाब्जं वन्दयन्ती तयैव,
प्रणय कलपदं सा प्राह गोविन्दचन्द्रम्॥३८॥

श्री राधागोविन्द के विलास रस रहस्य लोभी श्री प्रबोधानन्द सरस्वती पाद विरचित श्रीबृषभान नन्दिनी के चरणतल में निपतित उस ब्रजसुन्दरी नव सखी द्वारा परिगीत अति सुखप्रद इस गान को रसिक भक्तगण श्रवणपुट से पान करैं। (ज)

हे राधे ! मधुर विलास मदोन्मत्त वृन्दावन चन्द्र पुलक परिव्याप्त भुज दण्ड के द्वारा जब आपको बार बार गोद में धारण करेंगे दृढ़ आलिङ्गन करेंगे। तब नव युवराज को प्रचुरतर लावण्य छटा से अति उज्वल आपकी मूर्ति और भी परमोज्वल होगी। हे तथाभूत परम रसमयी ! उसी समय हमारे प्रति थोड़ा स्नेह युक्त दृष्टिपात करें अर्थात् उस समय के सेवा सुख सम्प्रदान में मुझे चरितार्थ करें ॥ ३७ ॥

स्वभाव से ही जिनका स्नेहार्द्र हृदय है वे करुणामयी श्रीराधा उस नव दासी के इस प्रकार कातरपूर्ण वाक्यों को सुनते हुए अत्यन्त स्नेह विगलिताश्रु युत टकटकी लगाकर उससे आलिङ्गन करने लगीं। और अपने प्राणवल्लभ को प्रणाम

सौराष्ट्री पाहाडिरागेण गीयते ।

वृन्दारण्य पुरन्दर सुन्दर कुन्दकलि द्विजवृन्द !
मन्दहसित भुवनैक मनोहर वदनविकसदरविन्द ॥ (क)
माधव रसमय परमानन्द ।
निजदयिता-पददास्यरसे मामभिषेचय सुखकन्द ॥ ध्रु० ॥
राधाबदन सरोरुह सम्भूत सीधु रसोन्मदभृङ्ग ।
प्रतिपदमुच्छलितातिरसार्णव समुदित केलि तरङ्ग ॥ (ख)
राधापीनपयोधरगिरिवरयुग्मनियन्त्रितचित्त ।
प्रति मृदु वाक्यभरोदितदुर्द्धर-मदनमहामदमत्त ॥ (ग)
राधाकेलि कुरङ्ग तदुज्ज्वल गुण जालक कृतबन्ध !
इन्दिरयापि सुदुर्ल्लभ लोभन पद मकरन्द सुगन्ध ॥ (घ)

कराया। वे प्रेम गद्गद कण्ठ से सर्वेन्द्रियाल्हादकारी गोविन्द को लक्ष्य कर गाने लगीं ॥ ३८ ॥

हे वृन्दाबन युवराज ! हे परम सुन्दरवर ! हे कुन्द कलिका सम दन्तधारी ! हे मन्द मधुर हसित ! हे त्रिभुवन मन मोहन ! हे विकसित कमल बदन ! हे माधव हे रसमय ! हे परमानन्द घन ! हे सुख निदान ! (क)

कहाँ तक कहा जाय, आप हमारी स्वामिनी श्री राधा के वदन कमलोत्थ—मकरन्दरसोन्मत्त भ्रमरवर हैं, प्रतिक्षण आपके हृदय में उद्वेलित मधुर रस सागरोद्भूत तरङ्ग माला खेलती रहती हैं। (ख)

श्री राधा के उन्नत पयोधर रूप गिरि युगल में निरन्तर आपकी चित्तवृत्ति नियन्त्रि रहती है। श्री राधा के अति सुकोमल रसमय एक एक वचन से उद्गत दुर्जय महामदन मद में आप उन्मत्त चित्त हैं। (ग)

हे राधा क्रीड़ामृग ! हे श्री राधा के शृङ्गार रस गुणजाल

राधा प्राण सखीगण सौहृद-मुदित-मनोहर वेश !
तन्मुख-मोहनचन्द्रविलोकन कौतुकनिकृतनिमेष ॥ (ङ)
राधा जीवन-भूषण-वैभव तनु धन बान्धव-मित्र ।
निरवधि रतिरण-खेलन-रञ्जित-बहुविध-चिन्हसुचित्र ॥ (च)
राधा-मान-गरल परिखण्डन-वेणुरवामृतकण्ठ ।
राधा महती ललित गीत श्रुति प्रेमविकुण्ठितकण्ठ ॥ (छ)
अयि कुतुकेन सरस्वति विरचित गीतमिदं बुधवृन्द ।
श्रुतिचसकेन निपीय महासुखमिह नु चिरादनुविन्द ॥ (ज)
जय जय सुखधाम श्यामकैशोरलीला,
मधुर मधुर भङ्गी ह्रेपितानन्तकाम ।

द्वारा आबद्ध हृदय ! हे लक्ष्मी प्रभृति के दुर्लभ एवं परमलोभनीय श्री राधा के चरण कमल मधु द्वारा सौरभान्वित ! (घ)

हे श्रीराधा की प्रिय सहचरी गण के सौहार्द से परमानन्दित चित्त ! हे नव नटवर ! हे श्री राधा के मुख रूप मनोहर-चन्द्र दर्शनानन्द में अनिमेष लोचन ! (ङ)

हे श्री राधा के प्राण, भूषण, वैभव, देह, अर्थ, आत्मीय, सुहृद हे तथाभूत ! हे निरन्तर रतिरण क्रीड़ा द्वारा जात चिह्न चित्रित देह ! (च)

हे राधा के मान रूप विषय गुणकारी बंशीध्वनि सुधा कण्ठ ! आपकी प्राणकोटि प्रियतमा श्रीराधा के चरण युगल के हास्य रस सागर में मुझे डुबो दीजिए। (छ)

हे रसिक भक्त बृन्द ! सरस्वती पाद विरचित इस संगीत रूप अमृत को कर्णाञ्जलि पुट के द्वारा पान करके इस जगत में चिरकाल परमानन्द लाभ कीजिए। (ज)

हे परमसुखमय श्यामसुन्दर ! आपकी जय हो ! जय हो !! आपकी मधुर से भी सुमधुर नव किशोर लीला विलास भङ्गि

शरदमृतमयूखज्ज्योतिरानन्दरश्मि,
स्मितमुख मम देहि स्वप्रियाङ्घ्र्यब्जदास्यम्३९
महारसैकाम्बुधि-राधिकायाः,
क्रीडाकुरंग ! स्मरविह्वलाङ्ग !
आनन्दमूर्त्ते निजवल्लभायाः,
पादारविन्दे कुरु किंकरीं माम् ॥ ४० ॥
अथ श्री गोविन्दे विकसदरविन्देक्षणलसत्,
कृपादृष्ट्याः पूर्ण-प्रणयरस-वृष्ट्या स्नपयति ।
स्थिता नित्यं पार्श्वे विविधपरिचर्य्यैकचतुरा,
न केषाञ्चिद्दृश्यं रसिकमिथुनं साश्रितवती ॥४१॥

द्वारा कोटि कोटि काम पराजित हो जाते हैं। हे शारदीय पूर्ण चन्द्र कान्ति से भी उज्वल लावण्यशालिन् ! हे स्मित मुख ! मुझे अपनी प्राण प्रिया श्री राधा के चरण कमल का दास्य प्रदान कीजिए। (३९)

हे महासम्भोग रस रत्नाकर स्वरूपा श्री राधा के क्रीडा कुरङ्ग ! हे काम विवश अङ्ग ! हे परमानन्द विग्रह ! मुझे अपनी प्राणप्रिया श्री राधा के चरण कमल की दासी कीजिए। (४०)

तदनन्तर श्री राधागोविन्द ने प्रफुल्ल कमल नयन की कृपामृत दृष्टि से पूर्ण प्रणय रूप रस वर्षा द्वारा उस नव सखी को अभिषिक्त किया। उस समय-युगल किशोर की कृपा से नाना विध सेवा चतुरा परम निपुणा ने निरन्तर उनके समीप रह कर रसान्तर निष्ठ कृष्ण परिकरादि के भी अगोचरी भूत परम रहस्य लीला विलास परायण उस रसिक युगल का आश्रय प्राप्त किया अर्थात् सर्वतोभाव से युगल किशोर की आश्रिता होकर उनकी रहस्य सेवादि करने लगी। (४१)

राधायाः कुचमण्डले कुवलयश्यामं स्वकीयं वपुः
संक्रान्तं समवेक्ष्य नीलवसनभ्रान्त्या करेण क्षिपन्।
मा यत्नं कुरु नो निरंशुकयितुं शक्याबुरोजौ ममे
त्यामोदस्मितया तया विहिसितो मुग्धो हरिः पातु वः॥४२॥

इति श्री संगीतमाधवे राधादास्यमहोत्सवो
नाम तृतीयः सर्गः।

॥ चतुर्थः सर्गः ॥

श्रीराधागोविन्दमिथोदर्शनोत्सवः ॥

सैवं सार्वदिकानवद्य-सहज-प्रोल्लासि-कैशोरके,
कौमारावधि राधिका मधुपति-स्वच्छन्द-विक्रीडने।

किसी समय युगलकिशोर के उद्दाम विलास में वसन, भूषण अस्त व्यस्त होगए, अतः श्री राधिका के उन्मुक्त (खुले) वक्षोज युगल निपतित नील कमल की तरह श्यामल वपु दर्शन में स्पर्श सुख का व्याघातकारी नील वसन भ्रम से दोनों हाथों के द्वारा उसको दूर करने का यत्न किया। मृदु मधुर हँसते हँसते श्री राधा बोलीं। हे रसिक चूड़ामणि ! वृथा क्यों यत्न करते हो ! इस प्रकार के नील वसनावृत मेरे स्तन युगल को तुम कभी भी निरंशुक (वस्त्रहीन) नहीं कर सकोगे। इस प्रकार परिहास रस के द्वारा विमुग्ध कृष्ण नाना प्रकार विलास रस कौतुक दर्शन देकर आप लोगों को परितृप्त करें। (४२)

वही नव सखी श्रीबृन्दाबन में श्रीराधामाधव के अतिकुमार प्रकाशित सहज नित्य निरवद्य निर्मल प्रचुरतर आनन्दमय नव कैशोर समयोचितयथेच्छविहारादिके निविड़ आनन्द रस में निमग्न होकर रसान्तर निष्ठ व्यक्तियों के लिये बाहिर में

सान्द्रानन्दरसे समाप्लुतवती वृन्दावनान्तस्तयो
र्दिव्यं दर्शयतो वहि नववयो मग्ना तयोरुत्सवे ॥ ४३ ॥
कदाचित् श्रीराधा नव नव वयोरूप-मधुराद्
भुतं श्री गोविंदं दिशि दिशि जनैर्वर्णितगुणम् ।
स्वभावादुद्भुत-प्रणायरस वैक्लव्य-वलिता
स्मरन्ती सोद्वेगं रहसि निजगाद प्रियसखीम् ॥ ४४ ॥

॥ श्यामगुर्जरीरागेण गीयते ॥

श्रुति-कुहरे विनिधातुमतिस्पृहममृतमयं वहुचाटुकम् ।
अति कातरमुखचन्द्रमुदीक्षितुमपि च दृशा चिरमुत्सुकम् ॥ क ॥

प्रकाशित वयः सन्धि सम्वलित युगल किशोर के नाना वैचित्र्य मय उत्सव में निमग्न हुई ॥ ४३ ॥

किसी समय चारों ओर सकल लोक जिनके अपरि सीम गुण गण गान कररहे थे एवं नव २ वयः सन्धि जनित रूप रस माधुर्यादि द्वारा अति अद्भुत श्रीराधागोविन्द का स्मरण करते २ स्वाभाविक प्रणय रस की अधीरता से अतिशय कातरा श्रीराधा ने परम उत्कण्ठा से उद्वेग के साथ एकान्त में प्रियसखी से कहा इस श्लोक से ग्रन्थकार यह प्रकाश करते हैं ।—श्रीबृन्दावन में आकुमार उद्भासित किशोर श्री राधागोविंद का अहैतुक और निरपेक्ष प्रेमानुराग के वशीभूत यथेच्छ बिहारादि एवं परमोद्दाम सम्भोगजनित चिन्हादि दोनों के अङ्ग प्रत्यङ्गादि में लक्षित होकर जातसन्देह परिजन गण के सन्देह निवारण के लिये वयःसन्धि अर्थात् पौगण्ड और कैशोर के सम्मिश्रणकाल में तदुचितविहारदि दिखाकर गौण सम्भोग के छल से पूर्बरागोचित कपट भाव इत्यादि मानना ॥ ४४ ॥

हे सखि ! चारों ओर ब्रज युवराज नंदनन्दन की अपरि-

सखिम ! श्याज्ञे मम मानसम् ।
वलति बलादिव मदन मदाकुल-मतिरस खेलनलालसम् ॥ध्रु०॥
अतिरस मत्ततया गत साध्वसं कलिताम्बर-चलदञ्चलं ।
भ्रूयुगलं परिघूर्ण्य भयं जनयितुमपि धृतरुचिचञ्चलम् ॥ ख ॥
तमपि हसन्तमथो कुच कञ्चुक-पाटन कृत-बहुसम्भ्रमं ।
अति तर्जन मनु ताडयितुं करवारिरुहेण ससम्भ्रमम् ॥ ग ॥

सीम रूप गुण लीला माधुर्य की बात सुनकर मेरा मन एकबार अधीर होगया है। कुल शील लज्जा धैर्य गुरुगौरव प्रभृति की बाधा उल्लंघन पूर्वक क्या अवस्था है जो प्राप्त हुई है उसे कहने कहने के लिये शब्द नहीं है। तुम मेरी नर्म सखी हो अतः तुमसे कुछ कहती हूँ सुन कर जिसमें कल्याण हो वही करो ॥क॥

क्या कहूँ सखी ! मन्मथराज चक्रवर्ती के मद में अन्ध होकर हमारे मन में श्यामसुन्दर की मधुर रसजनित लीला विलास लालसा मानों बल पूर्वक बढ़रही है। अतिशय स्पृहणीय श्यामसुन्दर के सुधामय अनेकानेक चाटुवाक्य सुनने के लिए मन अत्यंत उत्कण्ठित होरहा है। अत्यंत कातरता पूर्ण मुखचन्द्र एकबार नयन चकोर द्वारा पान करने के लिये अत्यंत पिपासित होरहा है। पुनः समय २ मन में इस प्रकार की वासना उदय होरही है कि जो अतिशय निर्लज्ज नागर, सम्भोगरस में उन्मत्त होकर हमारे वसनाञ्चल ग्रहण करने पर टेढ़ी भौंहें चढ़ाकर उसे डराने की इच्छा से मन अत्यंत चञ्चल हो रहा है॥ ख ॥

अनेक प्रकार के परिहासों के साथ मेरे कुच युगल पर से कञ्चुकी हटाने के लिये बार बार आग्रह शील आपकेकर-कमलों को तर्जन, ताड़न करने के लिये मन अति चञ्चल हो रहा है ॥ ग ॥

प्रहर शतं वचनेन तथापि च मुञ्चति हरिरिह न ग्रहम् ।
इति वादिनमनु हर्षयितुं हसितेन ममाकुलमन्वहम् ॥ घ ॥
निजरुचिरांसयुगे मम पुलकितमादधतं भुजमुज्ज्वलम् ।
मामधिरोपितवन्तमुरः स्थल रहगूहितुमति विह्वलम् ॥ ङ ॥
मदधर-सीधु-सुधारस संस्वदनेन समुन्मदचेतनम् ।
मादयितुं परिकुञ्चित लोचन-सीत्कृतिचय कृत चेतनम् ॥च॥
वहुविध सुरत कला चतुर प्रिय परितोषक निज कौशलम् ।
दर्शयितुं परिभावन-तत्परमथ मिलितुं रस विह्वलम् ॥छ॥

(और कितनी वासना है) मदनमदोन्मत्त होकर वे कहेंगे कि हे राधे तुम सौ सौ कटुत्तर वचनों से तर्जन, गर्जन, ऐसे प्रहार करो किन्तु यह हरि अर्थात् मनोमोहन तुम्हारे साथ मिलन क्रीड़ा कौतुक के विषय में कभी आग्रह परित्याग नहीं करेगा, निश्चय समझिए। इस प्रकार वचन सुनकर उनको आनन्दित करने के लिये मेरा मन सदा हंसेगा ॥ घ ॥

पुनः अति मनोहर अपने कंधे पर पुलक परिव्याप्त अति उज्वल मेरी दोनों भुजाओं को रख कर अपने वक्षःस्थल से मुझे लगाना मात्र उनके आलिङ्गन के लिए मेरा मन अत्यन्त व्याकुल होगा ॥ङ॥

अत्यन्त उन्मादकारी मेरे अधर सुधा के आस्वादन में उन्मत्त हृदय उनको और भी आनन्दित करने वाले मनमें अतिरिक्त विलास से नयन युगल ईषत् निमीलित एवं सत्कार करने की वासना से मन अत्यन्त व्याकुल होगा ॥च॥

अनेक सम्भोग कला कौशल विदग्ध रसिकेन्द्र चूडामणि को सर्वजन प्रिय, और अति तृप्ति करने वाले अपने चातुर्य को प्रकाश करने की इच्छा से उनका चित्त अति चिन्ता मग्न होगा एवं उनको आलिङ्गन करने के लिए अत्यन्त रस विह्वल होंगे॥ छ॥

तदिति सखीमनु राधिकया परिगीत मनोरथ पुञ्जकम् ।
मुदित सरस्वती-सरभस भावितमस्तु विषयरतिभञ्जकम् ॥ज॥
प्रसून चयनच्छलादथ सखीजनै र्निर्गता,
विवेश हरिमीक्षितुं मदनजीवनं काननम् ।
प्रियं परिविचिन्वती किमपि पुष्पकं चिन्वती,
चिरं चकित लोचना तरुतले च बभ्राम सा ॥४५॥
अथापूर्णं स्वर्णच्छविभिरभिवीक्ष्यखिलवनं,
खगादीनुन्मत्तानपि मधुपमालाः प्रचलिताः ।
अथाकस्मादात्मन्यपि किमपि जाताकुलतया,
हरिस्त्यक्त्वा खेलां चिरमकृत तन्मूलमृगयाम् ॥४६॥

प्रिय नर्म सखी को लक्ष्य कर इस प्रकार अपना मनोरथ प्रकाशक परमानन्दमय, सरस्वती पाद रचित यह सङ्गीत इतर रस की आसक्ति को नष्ट करै अर्थात् सहचरी भाव प्रदान करै ॥ज॥

तदनन्तर श्रीराधिका पुष्प चयन के छल से प्रिय प्राण-वल्लभ के दर्शन की इच्छा से सहचरियों के साथ घर से निकल कर "मदन जीवन" नामक कुञ्ज में गईं । बन में जाकर सखियों के विश्वासार्थ कुछ थोड़े फूल तोड़े । पुनः चकित नेत्रों से प्रियतम को अन्वेषण करते २ बहुत देर तक वृक्ष के नीचे भ्रमण करने लगीं ॥४५॥

इधर श्रीकृष्णचन्द्र खेलते २ समीप बन के प्रति लक्ष्य करके देखते हैं कि चारों ओर सुवर्ण कान्ति से आलोकित पशु-पक्षिगण, आनन्दोत्फुल्ल भ्रमर श्रेणी अत्यन्त चञ्चलता के सहित फूल-फूल पर भ्रमण कर रही है। देख कर हठात् अपने मनमें एक अनिर्वचनीय व्याकुलता को अनुभव कर सखियों के साथ खेल कूद छोड़ कर कहां से इस बन में ऐसा नव-भाव उदित हुआ ? इसका मूल-अन्वेषण करने लगे ॥४६॥

ततो रूपलावण्यसीमां किशोरीं,
सुदूरे समालोक्य काश्मीरगौरीम्।
स्खलद्बर्हमौलिर्गलत्पीतवासाः,
करभ्रष्ट वेणुः पपाताप्तमूर्छः ॥४७॥

ततो मन्दस्पन्दं नवजलदवृन्दं तनुरुचा,
विनिन्दन्तं म्लायद् वदनमरविन्दं विदधतम्।
तथाभूतं सापि प्रियमभि समीक्ष्यान्तिकगता,
करस्पर्शेनोन्मीलितदृशि तिरोधात् स्मितमुखी ॥४८॥

अथ तं प्राणसुहृदं विचिन्वन् वीक्ष्य विह्वलं।
लुठन्तं भूतले प्राह श्रीदामा स्नेहकातरः ॥ ४६ ॥

इस भाव में कुछ क्षण अन्वेषण करते २ सुदूर बन में अपरि सीम रूप-लावण्य की परावधि कुंकुम गौरांगी नव किशोरी राधिका के दर्शन करके उनके अङ्ग अवश होगये। मस्तक का मोर मुकुट झुक गया, कटि से पीताम्बर खसक गया, हाथ से वंशी सरक कर गिर पड़ी, ऐसा क्या कि देखते २ वे अधीर होकर मूर्छित होगये ॥४७॥

अनन्तर जिनकी अङ्ग कान्ति नव-जलधर पुञ्ज को भी तिरस्कार करती है, श्री राधिका उनको दूर से इस प्रकार की अवस्था सम्पन्न (देह अल्प स्पन्दित हो रहा है, मुखारविन्द अति मलिन-एवं विध) प्राण प्रियतम को दूर से देख कर धीरे २ समीप आकर वक्षःस्थल में हस्त स्पर्श किया उसी से आपने नेत्र खोल दिए। श्रीराधा भी मृदु २ हँसते २ अन्तर्हित होगईं ॥४८॥

इधर बहुत देर जब तक प्राण सखा, श्रीकृष्ण के अदर्शन से विरह व्याकुल श्रीदामा, बहुत अन्वेषण करते २ भूतल में पतित अत्यन्त विह्वल था उसको देख कर बोले ॥४६॥

गता दूरे गावो दिनमपि तुरीयांशमभजद्,
वयं क्षुत्क्षामाः स्म स्तव च जननी वर्त्मनयना।
अकस्मात्तृष्णीके सजलनयने दीनवदने,
त्वयि त्यक्त्वा खेलां नहि नहि वयं प्राणिनिपवः ॥५०॥
अथ सख्या पटीयान्त मृष्टवक्त्रः स मोहनः।
स्मारं स्मारं प्रियामेतां सगद्गदमिदं जगौ ॥ ५१ ॥

देशीवराडिरागेण गीयते ॥

स्तवक युगमुन्नतं वहति रस सम्भृतं,
मदन मदराशि–सुख सारम्।
क्षिपति रसलोभिनं भ्रमरमनुयायिनं,
दोलयति पल्लवमुदारम् ॥ क ॥

सखा रे! धेनुगण तुझको न देख कर दूर वन में चली गई; ध्यान से देख ? दिन भी शेष हो चला, यशोदा रानी तेरी बाट जोहती हुई कितना दुःख पा रही होंगी। हठात् तू हमारे साथ खेल कूद छोड़ चला आया। मलिन बदन एवं आंखोंमे आंसू भरे देखकर हमारे प्राण नहीं बच रहे सखा! (इस प्रकार श्रीदामा ने अपने अञ्चल से श्रीकृष्ण का मुख पोंछ दिया) ॥५०॥

तदनन्तर श्रीदामा के वसनाञ्चल से मार्जित वदन श्रीकृष्ण, सखा के वाक्य सुनकर सुदीर्घ निश्वास परित्याग करते हुए प्रियतमा श्रीराधा को स्मरण करते २ अति विमुग्ध भाव से वाष्प गद्गद् कण्ठ होकर इस पद को गाने लगे ॥५१॥

भईया श्रीदामन्! आज मेरी जो अवस्था होगई है, इसे वर्णन करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। कुछ कहता हूँ सुन! सखा रे! अभी २ कोई अनिर्वचनीय कनकलता मेरे सामने आई उसके रूप की बात क्या कहूँ। मदन की मदराशि से भी सुधा-

सखे हेमवल्ली कापि पतितादथ मम दृष्टिं।
चलति ललिताद्भुतं मदनमदमन्थरं,
किरति-मयि किमपि रसवृष्टिं ॥ ध्रु० ॥
अनुतिमिरभास्वता विमल विधुमण्डलं,
तत्र रसलहरीकृतदोलम्।
द्वितय विकचोत्पलं गरल मधुवर्षिणं।
नर्त्तयति मुग्ध मृगलोलम् ॥ ख ॥
अरुण कमल द्वयं किमपि नव कोमलं,
चञ्चदलिपटलमविरामम्।
रुचिर शशि मण्डलं ललित रुचि विभ्रती
दर्शयति सूलमभिरामम् ॥ ग ॥

सार, परम रस परिपूर्ण अति उन्नत दो स्तवक (गुच्छे) उसके हृदय में झूलते थे। रसलोभी भ्रमर की तरह उन स्तवक द्वय पर आकृष्ट मुझे देखकर अति मनोहर पल्लव कम्पित करके मुझे निराश कर दिया ॥क॥

रूपराशि वह लता मदन मद से विमुग्ध होकर मेरे प्रति कोई अनिर्बचनीय रस वर्षण करते करते मनोहर एवं अद्भुत गमन की भङ्गी करते हुए धीरपद से चलती थी। क्या अपूर्व ? उस स्वर्णलता के पीछे भाग में स्थित अन्धकार युक्त सूर्य के सहित रस तरङ्ग में दोलायतान निर्मल पूर्ण चन्द्रमण्डल शोभा पारहा है। पुनः देखा कि-उस लता के साथ अति मनोहर मृग की तरह चञ्चल एकसाथ विष और अमृत की बर्षा करतेहुए दो खिले कमल घूमरहे हैं ॥ ख ॥

उस लता में नृत्यपरायण चञ्चल भ्रमर माला परिवेष्टित सुकोमल अतिरूप युत अभिनव अरुण कमल द्वय शोभा पा रहे हैं। अतिमनोहर कान्तिबिशिष्ट उज्वल चन्द्र, मण्डलधारण कर

द्वितयमभितोमहा मधुररुचिकन्दलं,
दोलयति कोमल मृणालम् ।
स्फुरदमृतचन्द्रिकां किरति रतिदायिनीं,
काममुपनयति विकरालम् ॥ घ ॥
यदि निकट मागता वदति मृदु लीलया,
त्वमसि मम नीलमणिशाखी ।
प्रिय सुहृदयें तदा भवति मम चेतना
स्थातुमहमहह घनदुःखी ॥ ङ ॥
अणु सुतनु मध्यतः कमपि दधती भरं
चित्रमिव चकितमिह दृष्ट्रा

के भङ्गिक्रम से अभिलाषापूर्ति का मूल, अर्थात् निभृत निकुञ्ज का दर्शन करा रहा है ॥ ग ॥

अति मधुर बहु कान्ति परिपूर्ण अति सुकोमल दो कमलनाल चारों ओर मनोहर भाव से दोलायित हो रहे हैं। क्या कहूँ श्रीदामन् ? विलासतृष्णाप्रदायिनी अमृत ज्योत्स्ना वर्षण करते करते मेरे हृदय में दुर्दमनीय काम को उत्पन्न कर रहा है ॥ घ ॥

प्रिय सखा रे ! अपने प्रान की वासना तुझ से कहता हूँ सुन ! वह अनिर्वचनीय स्वर्णलता मेरे पास आकर लीला वशतः धीरे-धीरे हँसते हँसते कहती है " हे श्याम सुन्दर कनकलता स्वरूपा मेरे तुम ही एकमात्र नीलमणि वृक्ष अर्थात् आश्रय हो" तभी मेरा चित्त स्थिर होगा। किन्तु सखे। वह तो मेरा भाग्य नहीं हुआ। अतः मैं अब किसी भी प्रकार चित्त को स्थिर नहीं कर सक रहा हूँ अत्यन्त दुःख से समय बिता रहा हूँ ॥ ङ ॥

वही भुवन सुन्दरी सूक्ष्म से भी सूक्ष्म कटि देश में आश्चर्य रूप में उत्तुङ्ग पयोधर युगल को विशाल भाव से धारण

प्रणय सुख वर्षिणी मम हृदय कर्षिणी
नैव वत भवति विधि-सृष्टा ॥ च ॥
स्थलनलिनबन्धुजीवक तिलक सुन्दरं,
कुन्दकलि-पंक्ति-धृतहारं ।
इह हि घनकानने व्रतति गृह कोटरे,
विचिनु मम जीवतनुसारम् ॥छ॥
प्रिय सुहृदि राधिका रूपमुपदेशतो,
मधुर-मधुर गीत-कमनीय ।
रसमय सरस्वति भणित मिदमद्भुतं,
गावत वत परम रमणीयम ॥ज॥

किए है । चकित की तरह यहां पर मेरे नेत्रों के आगे वह आई, मैं एक साथ विस्मित होगया, सखा रे ! प्रेम रस वर्षिणी मेरे मन प्राण को आकर्षण करने वाली वह कनक प्रतिमा कभी साधारण विधाता के द्वारा निर्मित नहीं हो सकती यह मैं निश्चय कहता हूँ ॥च॥

हे सखे ! स्थल कमल (गुलाब) बन्धुजीव (गुड़हर) एवं तिल पुष्प तथा कुन्द कलियों का हार जिसके अङ्ग में सुशोभित है । मेरे तन, मन, प्राण का सार-रत्न स्वरूप उस वस्तु को एक बार अनुसन्धान करके देख ! भाई ! निश्चय ही इस वृन्दावन की निभृत लता कुञ्ज में विराजमान हैं ॥छ॥

प्रिय सखा श्रीदामा के प्रति श्री राधिका के रूप गुण के उपदेश के ब्याज से रसमय सरस्वती पाद रचित, प्रेमानुराग परिपूर्ण अति सुकोमल भावमय श्री कृष्ण के द्वारा आलपित अतिअद्भुत परम रमणीय इस पद्य का रसिक-भक्त गण प्राण भर कर आस्वादन करें ॥ज॥

उत्तिष्ठ मा कुरु चञ्चल मन्दिराय,
　　धेनूः समाह्वय महामुरलीरवेण।
प्रायो ब्रजे बसति कापि विमोहिनी ते,
　　नो दुर्ल्लभापि भावता बुध माकुलोऽभूः ॥५२॥
इत्थं प्रियस्य सुहृदो वचनामृतेन,
　　किञ्चित् स्थिरीकृतमति भवनं प्रविष्टः।
नाति प्रफुल्लमुखं वेदितया जनन्या,
　　सलालिता निशि हरि र्न जगाम निद्राम् ॥५३॥

(इस (छ) पद्य को रूपक में श्री कृष्ण ने कहा है—अर्थात् स्वर्णलता श्री राधिका, स्तवक युगल=स्तन युगल, पल्लव=हस्त, रसवृष्टि=नयन कटाक्ष, तिमिर=केशपाश, सूर्य=सिन्दूर विन्दु, चन्द्र=वदन मण्डल, विकचोत्पल=नेत्र युगल, अरुण कमल=कर्णद्वय, भ्रमरमाला=अलकावलिः, शशि मण्डल=उज्वल गण्ड-स्थल, मूल=निभृत निकुञ्ज, मृणाल=बाहुद्वय, अमृत=हास, स्थल कमल=चरण युगल, बन्धुजीव = अधरोष्ठ, तिल पुष्प= नासिका, कुन्दलता = दन्त पङ्क्ति,को लक्ष्य कर वर्णन किया है)।

श्रीदामा श्रीकृष्ण के वचन सुनकर बोले—हे सखे ! उठो, हे चपल चूडामणि ! इस प्रकार अधीर मत होओ। वंशी ध्वनि से घर जाने के लिए गौओं को बुलाओ, तुम्हारे मन प्राण हारिणी वह विश्वमोहिनी अननुभूतपूर्वरत्न इस ब्रज में ही निवास करती है, तुम तो सुबोध हो, ऐसे व्याकुल क्यों हो रहे हो कैसे चलोगे, वह रत्न तुम्हारे लिये दुर्लभ नहीं है, ऐसा मुझे विश्वास है, शीघ्र ही हस्तगत होगा ॥ ५२ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार प्रिय सखा श्रीदामा के आस्वासनों से कुछ शान्त होकर अपने घर गये। किन्तु मन प्रसन्न नहीं था। मुख मलीन देखकर यशोदा माता ने बड़े लाड़ प्यार किये किंतु अत्यन्त उत्कंठा के कारण उनको रात्रि में निद्रा न आई॥५३॥

विद्धं तीक्ष्णशिलीमुखैर्मृगदृशोऽप्यङ्गैरुदीर्णैश्चिरं,
चूर्णीभूत-महो पयोधर-गिरिद्वन्द्वेन वर्द्धिष्णुणा।
रोमाली भुजगेन दष्टमपतन् नाभिह्रदे मन्मनो,
राधाया इति वर्णयन् परिजनैः सास्रो हरिः पातु वः ॥ ५४ ॥

इति श्रीसंगीतमाधवे श्री राधागोविन्द मिथो
॥दर्शनोत्सवो माम चतुर्थः सर्गः॥

पञ्चमः सर्गः

राधासख्यनुनयः

अथोत्तुङ्गं शृङ्गं निजदयित-गोवर्द्धन-गिरेः,
समारुह्याशेषव्रज निलय विन्यस्त नयनः।
विलोक्य श्रीदाम्ना किमपि वृषभानो र्गृहमणिं,
कराङ्गुल्या सम्भावित-हृदय-चौरीं समुमुदे ॥ ५५ ॥

सखारे ! सुन, कहता हूँ। "अत्यन्त प्रखर सान धरे हुए बाण की तरह मृग-नयनी श्रीराधा के नेत्र कटाक्षों से विद्ध उनके उत्तुङ्ग बिशाल पयोधर रूपी पर्वत युगल के द्वारा चूर्णित-एवं रोमावली भुजङ्ग द्वारा दृष्ट, हमारा मन उनके नाभिरूप ह्रद (तालाब) में गिर गया है" इस प्रकार अपने परिजन के सहित श्रीराधा के अङ्ग प्रत्यङ्ग वर्णन कारी सजलनयन श्रीकृष्ण आपकी रक्षा करें ॥ ५४ ॥

पञ्चम सर्गः।

अनन्तर श्रीकृष्ण चन्द्र ने श्रीदामा के साथ अपने अतिप्रिय गोवर्धनपर्वत के अति उच्च शिखर पर चढ़कर ब्रज के समस्त ग्राम की कुटीरों को देखते देखते अङ्गुली निर्देश कर के श्री बृषभानु राजा के गृहरत्न स्वरूप श्रीराधा को देखकर " मेरी-मन प्राण हारिणी यही है " ऐसा अनुमान करते परमानन्द प्राप्त किया। ॥ ५५ ॥

तदारभ्य क्षुभ्यद्धृदयमतिलुभ्यत् सुविधुरं,
दधानो राधायाः स्फुरदधरा-मीधु स्वदयितुं ।
व्रजन्तीमेकान्ते व्रजनगरवीथ्यां मधुपति—
र्विलोक्य प्रेयस्याः प्रियसहचरीं प्राह कृपणः ॥ ५६ ॥

॥ तथाहि कर्णाटरागेण गीयते ॥

विनिवेदित बहु दुःखभरेण निरुत्तर हेलनयानां,
सम्मुखतरमुपजातवता कृतकटुतरवचनवितानाम (क)
ललिते श्रीवृषभानुकिशोरीम् ।
रमय मयाद् भुत केलि-मनोरथ-मुदित-मनो-मणिचौरीम (ध्रु०)

उसी दिन से अर्थात् गोवर्धन के ऊपर से देखने के दिनसे लुब्ध भ्रमर की तरह रस में विभोर ईषत् कम्पित, श्रीराधा के अधर सुधा आस्वादन मानस में परमलोभी एवं क्षुब्ध हृदय माधव भ्रमण करते करते ब्रज नगरके मार्ग में निर्जन भ्रमण शीला श्रीराधा की किसी प्रिय सहचरी को देखकर अतिकातर होकर बोले ॥ ५६ ॥

हे ललिते ! अद्भुत विलास लालसा से विमुग्ध एवं परमानन्दित मनरूप मणि को हरण करने वाली तुम्हारी प्रिय सखी श्री बृषभानु किशोरी को एक बार मेरे साथ विहार करा-कर मेरे प्राणों की रक्षा करो । हे ललिते । इस समय मेरे मन में अनेक वासनाऐं उदित हो रही हैं, सुनो ! मैं उनको पाकर इस प्रकार आचरन करूंगा । हेसखि ! अत्यन्त दुःख भरी प्राण वेदनाओं के निवेदन करने पर तुमारो सखी उसका उत्तर तो देगी ही नहीं ? परन्तु अवज्ञा कर के चली जायगी । सन्मुख जाकर कहूँगा क्या सामने जाने मात्र से ही वड़े बड़े कटु वचन कहकर मेरी उपेक्षा करेंगी ॥ क ॥

कलितवताऽञ्चलमतिमदनाकुल-मनसा मौक्तिकदतीम् ,
मुञ्च मुञ्च चटुलेति विभंगुर-भ्रू लतिकं निगदन्तीम् (ख)
अर्पयता मणिवेणुमथापर मुद्रिकमपि पदमूले ।
पदहतिदूर-निरासकरीमपि मयि विमुखी मनुकूले (ग)
रदतृणकाकुशतैकपरेण निरन्तर नहि नहि भाषाम् ।
पतितवता चरणे किमपीङ्गित मृदु मृदु हास विलासाम् ॥घ॥
नीतवता घन-पुलकित-भुजमवलम्ब्य निभृति नवकुञ्जम् ।
रतितर साकुलिताऽञ्च मया भजता त्वति कौतुकपुञ्जम् ॥ङ॥

मदन मद से मत्त एवं अति व्याकुल होकर उनके वस्त्र के अञ्चल को ग्रहण करने मात्र से ही मुखसे हँसती भोंहें टेढ़ी करके 'हे चपल चूडामणि ! छोड़ छोड़ कहकर मेरा तिरस्कार करेंगी।।ख।।

मन में विचार करता हूँ कि सर्वस्व समर्पण कर शरणागत होता हूँ, देखूँ कृपा पाता हूँ या नहीं ? सोचकर मेरी प्राण सर्वस्व मणिमय बंशी एवं समस्त अँगूठी आदि लेकर उनके चरण तल में समर्पण करने पर ग्रहण करना तो बहुत दूर बात है किन्तु चरणों से ठुकरा कर दूर फेंकते हुए अनुकूल, अर्थात् शरणागत मेरे ऊपर एक बार बिमुखी भी होंगी ॥ ग ॥

उस समय दांतों में तृण दबा कर कातर प्राणों से कितनी प्रार्थना, सौ-सौ चाटु कारि वचन कहूँगा, किन्तु निरन्तर "नहीं नहीं अर्थात् क्यों व्यर्थ चेष्टा करते हो मेरे द्वारा कुछ न होगा" यही बात कहेंगी ॥ घ ॥

उस समय अनन्योपाय होकर चरणों में गिर कर अभावनीय मृदु २ हास द्वारा इङ्गित प्रकाश करूंगा । मैं अति उत्सुकता राशि पाकर उनके घन पुलकाञ्चित बाहु ग्रहण पूर्वक निभृत निकुञ्ज में ले जाकर उस विलास रस तृष्णा से अति व्याकुल होऊंगा ॥ ङ ॥

दृढ़मुपगृह्य मृषा रुदतीमपि पिवताधर-रस सारं।
कुचकोरक नख लेख परेण विपावितरुचिर-विकाराम ॥च॥
करयुगनीविनिवेशयता वहुकृत-विनिरोध-प्रयासाम्।
सुरत महारस-रंग परेण समुन्मद-मदन-विकाशाम् ॥छ॥
इति मधुसूदन रसमय-वैभव-भावनया रमणीयम्।
मुदित सरस्वति गीतमिदं रसभाववतां कमनीयम् ॥ ज ॥

प्राणास्तवैव वपुषा सह मे मृगाक्षि,
रत्नोज्ज्वलां मुरलिकां नय मुद्रिकाञ्च।

देख कर दृढ़ आलिङ्गन पूर्वक अधर सुधारस पान करते रहते उनके कपट रोदन परायण होने पर भी मैं वल-पूर्वक उनके स्तन मुकुल में नखाङ्क करने मात्र से उनके सर्वाङ्ग में नाना रूप भाव का विकार प्रकाश पाऊंगा। कामोन्मत्तता के कारण कर युगल द्वारा उनकी नीवि उन्मोचन करने पर वे अनेक वाधा उपस्थित करेंगी ॥ च ॥

मैं और धैर्य धारण में असमर्थ होकर महा सङ्गम रस रङ्ग में उद्धत भाव अवलम्बन करने पर उनको भी महोन्माद मदन विकार प्रकाश पायेगा। अर्थात् रति-रण में मुझे परास्त करने का प्रयास किया जायगा ॥ छ ॥

इस प्रकार मधुसूदन श्रीकृष्ण के रसमय लीला विहारादि भावना के द्वारा अत्यन्त रमणीय श्रीपाद सरस्वती विरचित यह पद्य रसिक एवं भावुक-भक्त गण को सदा वाञ्छनीय हो ॥ज॥

हे ललिते! अब मेरे हृदय में धैर्य नहीं है। मेरा यह देह मन प्राण तुम्हारे चरणों में अर्पण करके तुम्हारा होगया हूँ। यह लो मेरे प्राण तुल्य मणिमय वंशी तुम्हें दी। यह नामाङ्कित अंगूठी लो, मैं और क्या कहूँ अन्य विलसादि की बात दूर रही मदन-मद विकम्पित तन भुज युगल द्वारा एक वार तुम्हारी प्राण सखी

आस्तां परं सकृदपि स्मर वेपिताभ्यां,
दोर्भ्यां तव प्रियसखीं दृढमास्वजानि ॥५७॥
कथं घनरसप्रदो नवलतां तडिज्ज्योतिषं,
कथं नु मधुसूदन स्त्यजतु तादृशीं पद्मिनीम् ।
कथञ्च नहि सङ्गतो भवतु राधया माधव,
स्तदद्य ललिते यथोचित-विचारमेवाचर ॥ ५८ ॥
व्रजनृपति कुमारे कोटिकन्दर्पसारे,
वदति विकलमेवं प्राह सा गूढभावा !
स्व-पर-पुरुष सङ्गे सर्वदा सा विरक्ता,
भवि परमसाध्या मत्सखी ते विमुग्धा ॥५९॥

श्रीराधिका को दृढ़ आलिङ्गन कराके हमारे प्राणोंकी रक्षा करो॥५७॥

हे ललिते ! बोलो देखो नव-जलधर कभी भी विद्युत् कान्ति नवलता को छोड़ सकता है ? और देखो मकरन्द लोभी मधुसूदन क्या इस प्रकार विकसित पद्मिनी को परित्याग करने में समर्थ होता है । अतः श्राराधा से माधव भी कभी पृथक् रह सकता है। अतएव हे ललिते ! तुम भी इन विषय में ठीक र विचार करो मैं तुम्हारे ऊपर समस्त विचार का भार देता हूँ ॥५८॥

कोटि मन्मथ मन्मथ रसिक चूडामणि नन्दनन्दन श्रीकृष्ण अति व्याकुल होकर ललिता के आगे इस प्रकार कहने के अनन्तर, अति गम्भीराशया चतुरा ललिता कुछ उदास होकर उनसे बोली, हे रसिकेन्द्र शेखर ! श्यामसुन्दर ! तुम्हारी सब बातें सुनी तथा मन का भाव समझा, किन्तु क्या करूं, मेरी वह सखी 'श्रीराधा' ऐसे परम सुन्दर अपने निज पतिके संसर्गमें सदा आसक्ति रहित है, पर-पुरुष की तो बात ही क्या, अतः आपसे उनका मिलना अत्यन्त असंभव । (किंतु तुम अनुरोध कर रहे हो तो एक वार प्राणपण से चेष्टा करके देखूंगी) ॥५९॥

अथ वर्त्मनि लोकसङ्कते विमृशं स्तद्वनमागतो हरिः।
ललितापि तदैव राधिकामिदमूचे समुपेत्य सादरम् ॥६०॥

॥ गुर्ज्जरीरागेण गीयते ॥

सन्ततमभिलाषुक-कमलादिक-सकल-विलासिनी वृन्दं।
चिरमपहाय तथैव पदाम्बुज परिमल-कृतरतिबन्धम् ॥क॥
राधे भज व्रजराजकुमारम्।
सत्वरमभिसर मम बचनेन नु मा कुरु मनसि विचारम् ॥(ध्रु०)
पथि पथि तव दासी जनपद तल विलुठित मौलि शिखण्डं।
साश्रु विलोचनमवनीलोचनमतिपाण्डुरमृदुगण्डम् ॥ख॥

अनन्तर मार्ग में अनेक प्रकार के लोग आ जा रहे थे. देखकर श्रीकृष्ण थोड़ी चिन्ता करते हुए कातर नेत्र से ललिता के प्रति दृष्टि निक्षेप करते २ इङ्गित से मनोभाव निवेदन पूर्वक उस वृन्दाबन में प्रविष्ट हुए,ललिता भी तत्क्षण श्रीराधा के निकट जाकर सादर सम्भाषण पूर्वक उनसे बोली ॥६०॥

हे प्रिय सखी राधे! आज बड़े ही मदन के आवेग में तुमसे कई एक बातें कहने आई हूँ। मन देकर सुनो, जिसे देखकर या सुनकर आई हूँ, वह प्रकाश करने के साध्य नहीं है। क्या कहूं सखि! सतत अभिलाषिणी लक्ष्मी प्रभृति कोटि २ विलासिनी रमणियों को चिरकाल के लिए दूर छोड़ कर तुम्हारे चरण कमल की सौरभ के प्रति अत्यन्त आसक्त है ॥ क ॥

ब्रज के प्रत्येक मार्ग में तुम्हारी किसी दासी के दर्शनमात्र पाकर तुम्हारी प्राप्ति की आशा से अति अधीर होकर उसके चरण-तल में अपने मस्तक का मयूर मुकुट उतार कर रख देता है, एवं आंखों में जल भर कर नीचे को मुख करके खड़ा हो जाता है ॥ ख ॥

विषम कुसुमशर-शर भर जर्जरमतिसुकुमारशरीरं ।
निरवधि तव संगम रस लालस मानसमवशमधीरम् ॥ग॥
अद्भुत कोटि मनोभव मोहन गुण लावण्य निधानम् ।
तव पददासतयार्पितवन्तं स्ववपुर्गलदभिधानम् ॥ घ ॥
निभृतनिकुञ्जतले तव नागरि नामपदानि जपन्तम् ।
ध्यायन्तं तव रूपविलासं साश्रुतया निवसन्तम् ॥ ङ ॥
त्वयि सहजानुरागरस विह्वलमपि न स्मृत तनुगेहम् ।
अनलंकृत मार्जित-कलितोज्ज्वल-पीताम्बरवरदेहम् ॥ च ॥

उनका सुकोमल गण्डस्थल विरह-कातरता से पाण्डुवर्ण; मुख-मण्डल अतिशय मलिन, आहा कैसा सुकुमार शरीर मदन वाणाघात से जर्जरित, निरन्तर तुम्हारी सङ्गम-रस की लालसा से मन अस्थिर, ऐसा क्या कि समय २ पर मूर्छित होजात हैं ॥ग॥

क्या कहूं सखि ! जो जन कोटि २ कन्दर्प मोहन अद्भुत रूप गुण लावण्य के आकर स्वरूप, वे आज प्रेम गद्गद् कण्ठ से तुम्हारे पद-कमल के दासत्व के लिए देह, मन प्राण अर्पण करते हैं, वे नागर निकुञ्ज के भीतर भूमि में बैठ कर तुम्हारे रूप लावण्य विलासादि का ध्यान करते हैं, एवं साश्रु गद्गद् कण्ठ से तुम्हारे नामाक्षरों का जप करते हैं ॥घ॥

तुमारे प्रति स्वाभाविक अनुराग रस से विह्वल होकर देह गेह पर्यन्त भूलगए हैं । अलङ्कारादि परिशून्य ऐसे सुन्दर शरीर का निरन्तर मार्जन पर्य्यन्त नहीं है, केवल तुमारे वर्ण की समानता के कारण अति उज्ज्वल पीत वसन बड़े यत्न से धारण कर रहे हैं ॥ ङ ॥

क्या कहूँ राधे ! अति मनोहर तुमारे चरण की नख कान्ति के एक कण के ऊपर कोटि कोटि प्राण नौछावर करते

प्राणकोटि सुनिराजित सुललित-त्वत्पदनखरुचिलेशं।
तव परिरम्भण-रस-परमाशाधृतजीवनमनिमेषम् ॥छ॥
श्रीवृषभानु सुता पद जीवन-रसद सरस्वति गीतम्।
जनयतु तद्रस मूर्त्ति पदाम्बुज-भावमुदारमधीतम् ॥ज॥
अयि किमपि कुरु त्वं रक्ष लोकञ्च धर्म्मं,
मम तु सखि ! गतैव प्रायशो जीविताशा।
मरकत मणिभासा तेन जाम्बूनदाभां,
तव यदि नहि वीक्षे भूयसीमङ्कभूषाम् ॥ ६१ ॥

हैं। निरन्तर एकमात्र तुमारे आलिङ्गन की परम लालसा से जीवन धारण कर रहे हैं ॥ च ॥

अतएव हे राधे ! मेरा विनीत अनुरोध है कि इस प्रकार परम अनुरागी रसिक शेखर ब्रज नव युवराज की सेवा करो और क्या कहूँ मेरे वाक्य पर निर्भर होकर शीघ्र अभिसार करो, तुमको मेरी शपथ है, मनमें और कोई विचार मत करना ॥छ॥

श्रीवृषभान नन्दिनी के चरण कमल ही एक मात्र जिनके जीवन हैं, वे सरस्वती पाद विरचित इस गीत का गान वा पाठ करें, इससे वही परम रसमयी श्रीराधा के चरण कमल में उन्नत, अर्थात् उज्वल भाव का उदय होगा ॥ ज ॥

यदि तुम कहो कि मैं सती कुलवती, मेरा धर्म, लोकलज्जा, गुरुजन भय, ये सब कैसे त्याग करूँ ? हे प्राण सखी और मैं क्या कहूँ तुम अपना धर्म, लोक लज्जा, गुरुजन की भय की रक्षा करो अथवा जो इच्छा हो करो, मेरा वक्तव्य शेष हुआ, यदि वह उज्वल नीलमणि निज श्याम अङ्ग के सहित तुम्हारी इस तप्त काञ्चन कान्ति की प्रचुरतर अंक भूषा अर्थात् जाम्बूनद स्वर्ण-जटित नीलमणि को नेत्र भरकर यदि नहीं देखती हूँ

मज्जंस्तत्कुचकुंकुमांक-यमुनातीर्थोदके रेणुभि:,
तस्या: श्रीपदपङ्कजाङ्कितभुव: सर्वाङ्गमागुण्ठयन ।
तद्द्वार्य्येव गतागतिं विरचयन् नित्यं सतृष्णेक्षण:,
कोऽपि श्याम-किशोरको व्रजपुरश्रीलम्पट: पातु व:॥६२॥
इति सङ्गीतमाधवे राधासख्यनुनयो नाम
पंचम: सर्ग: ॥

॥ षष्ठ: सर्ग: ॥

चतुरराधेश:

अति मधुर-विचित्र भ्रूलतानर्त्तनेन,
सुरत-समर-सौख्यं खेलयन्तीं मनोजम ।
ललित गति विलासै नूपुरक्वाणरम्यै:,
क्षणमनु नहि राधां माधवो धैर्य्यमाधात् ॥६३॥

तो मेरा जीवन समाप्त समझें । यदि मेरे जीवन की रक्षा करने की तुम्हारी इच्छा हो तो कोई विचार न करते हुए एक बार दृढ़ आलिङ्गन दान कर उनको कृतार्थ करो ॥ ६१ ॥

श्रीराधा के स्तन कुंकुम परिरञ्जित यमुना के घाट के जल में मज्जन शील, उनके श्री चरण कमलाङ्कित भूमि की रज के द्वारा परिलिप्त सर्वाङ्ग एवं सतृष्ण नेत्र से उनके द्वार पर सदा आने जाने वाले किसी परम अनुरागी ब्रजमणि लम्पट श्याम नव-किशोर निज लीला विलासादि दर्शन देकर आपका परि-पोषण करें ॥ ६२ ॥

जो रति समर समय में अति सुमधुर चातुर्य पूर्ण भ्रुकुटि धनुष के नटन द्वारा परम सुख उत्पन्न करते हैं । जिनकी गमन भङ्गि से परम रमणीय नूपुर ध्वनि विशेष में नागरेन्द्र के मन में मनसिज रस सागर उद्वेलित हो उठता है, उस श्रीराधिका को लक्ष्य करके माधव एक मुहूर्त्त भी स्थिर नहीं रह सकते हैं ॥६३॥

वहिः किं निर्यायादपि न भविता तद्गुरुजनः,
　　　　किमु स्मित्वा मयि कुटिलदृष्टिं रचयिता।
विलम्व्य स्थानादप्यधिककपटेन प्रियसखी
　　　　रथापृच्छेन्मुग्धा नवघनरुचिः कोऽयमिति माम् ॥६४॥
इति वहुविध चिन्ता व्याकुलो गोकुलेन्दुः,
　　　　श्रमज सलिल विन्दु श्रीमुख स्त्यक्तवन्धुः।
व्रजपुर उपहूतामुत्सवे क्वापि यान्तीं,
　　　　रहसि निज सखीभिर्वीक्ष्य राधां जगाद ॥६५॥

॥ श्यामगुर्ज्जरीरागेण गीयते ॥

देहि विवृत्य कृपामृत-दृष्टिं

रात दिन श्यामसुन्दर के मन में एक मात्र श्री राधा को छोड़ कर और कोई वस्तु स्फूर्ति नहीं होती, कभी मन में विचारते हैं कि उनके गुरुजन सास आदि क्या उनके पास कोई उपस्थित नहीं है। पुनः चिन्तन करते हैं कि वह क्या बाहिर कहीं चली गई? मेरे ऐसे कहाँ भाग्य हैं कि ऐसा सम्भव होगा कि वह मृदु२ हँसते २ मेरे प्रति कुटिल कटाक्षपात करें? अथवा मेरे हृदय का भाव न समझ कर अपने स्थान पर बैठे २ विमुग्धा भाव से मुझे लक्ष्य कर निज प्रिय सखी ललितादि से पूछे, हे सखीगण! यह नव-जलधर कान्ति युवा कौन है? ॥६४॥

इस प्रकार बहुविध चिन्ता से व्याकुल हृदय, स्वेद विन्दु व्याप्त मुख, गोकुलचन्द्र निज सखागण का साथ छोड़कर किसी निर्जन स्थान में मार्ग के निकट बैठे थे, उसी समय श्रीराधिका ब्रजपुर के किसी विशेष उत्सव के निमित्त निमन्त्रिता होकर अपनी सहचरियों के साथ जा रही थीं, देखकर बोलीं ॥६५॥

हे प्रेममयी राधे! मैं मन्मथ चक्रवर्ती की कोप दृष्टि में

शमय मम स्मर शरशिखि वृष्टिम् ॥क॥
राधे ब्रजपति नन्दकुमारं ।
परिचिनु मामधिगत रससारम् ॥ ध्रु० ॥
दर्शय हास्य-मनोहरमास्यं,
वितर सुखाकर कोटि सुहास्यम् ॥ ख ॥
त्वयि रुचिदायिनि सुचिरधृताशं ।
किमपि समादिश निजपददासम् ॥ ग ॥
तव कुच परिरम्भण रसलोलं ।
मामवलोकय गलितनिचोलम् ॥ घ ॥
निजकर-गत-ताम्बूलमखंडं ।
वितर कृपा यदि विकसित-गण्डम् ॥ ङ ॥

पड़ कर उसकी विषम शर वृष्टि से जर्जरित हो रहा हूँ, एक बार फिर कर देखो ! कृपामृत की वृष्टि से मेरी उस ज्वाला को शान्त करो। राधे ! यदि कहो तुम कौन हो ? तो सुनो, ब्रजपति गोप-राज नन्दन परम-रसिक शिरोमणि रूप में मुझे जानो ॥क॥

मृदु मधुर हास-युक्त कोटि सुधाकर विनिन्दित मुख-चन्द्रका का दर्शन दो, हास्य सुधा-वितरण करके हृदय की ज्वाला को निवारण करो ॥ ख ॥

हे परमाभीष्ट प्रदायिनि ! मैं बहुत दिनों से तुमारे चरण-कमल के मकरन्द की आशा से जीवन धारण कर रहा हूँ। मुझे अपना क्रीतदास जान कर कोई अनिर्वचनीय आदेश करो ॥ ग ॥

हे राधे ! देखो, मैं तुम्हारे उन्नत पयोधर युगल के आलि-ङ्गन रस के लोभ में चञ्चल होकर वस्त्र परित्याग करके बैठा हूँ ॥ घ ॥

हे रसमयी ! यदि कृपा हो तो सुस्मित मुख से अपने श्री-

अभयमलज्जमनकुंश-चेष्टं ।
कथमिव पश्यसि मम न कृतेष्टम ॥ च ॥
भवतु ममाद्य शुभरजनीयं ।
तनु तव रतिसुखमनुभवनीयम् ॥ छ ॥
इति रससार - सरस्वति-गीतं ।
रचयतु हरिपदरसमुपनीतम् ॥ ज ॥
वद बहुतररूक्षं पश्य मां शोणदृष्ट्या,
कुरु चरण-प्रहारं गच्छ वा सावहेलं ।
प्रमद-मदन-माद्यन्मुग्धबाह्यान्तरात्मा,
न खलु न खलु कृष्णो राधिके त्वां जहाति ॥६६॥

हस्त का अखण्ड ताम्बूल मेरे मुख में अर्पण करो ॥ ङ ॥

निर्भय, अतिशय निर्लज्ज, परम स्वतन्त्र, मेरी अभिलाषा के प्रति एक बार अपनी दृष्टि क्यों नहीं देती हो ॥ च ॥

मेरा आज परम सुप्रभात हैं, आज की रात्रि मेरे लिए अत्यन्त शुभकरी है, अतः किञ्चित् मात्र ही तुम्हारे सङ्गम सुख का अनुभव करूंगा ॥ छ ॥

इस प्रकार परम रस प्रद सरस्वती पाद रचित इस पद्य का गान रसिकजनों के प्राण में साक्षात् श्रीहरि के चरण-कमल में उज्वल रस उत्पन्न करें ॥ज॥

हे राधे ! बड़े २ कटु वचन कहो, अथवा रक्त नेत्रों से क्रूर दृष्टि निक्षेप करो, किंवा मेरे वाक्य की अवज्ञा करके चली जाओ. यहां तक कि पाद-प्रहार भी करो, किन्तु प्रबलतर मदन मदोन्मत्त बाह्याभ्यन्तर यह कृष्ण तुम्हारा कभी परित्याग नहीं करेगा; यह निश्चय है ॥ ६६ ॥

नहि नृपतिभयं मे नो पुनर्लोकलज्जा,
न च मम कुलशील-ख्याति-रक्षाद्यपेक्षा।
तव कुटिल-कटाक्षैस्तीक्ष्णबाणैः क्षतोऽहं,
नव कुच परिरम्भेणैव जीवामि राधे ॥ ६७ ॥

अथ प्रेम रसागाधा राधा साधारणक्रमात्।
प्राह प्रियसखीमेतदुपश्रृण्वति माधवे ॥ ६८ ॥

॥ मालवगौडरागेण गीयते ॥

भुवन विदित-परिशुद्ध-कुलद्वयं मनागपि न धृत कलङ्कं।
मम च सुविश्रुत शील महोदयमवधारय गतशंकम् ॥ क ॥

यदि कहो ! तुम्हे कोई राजभय वा लोक लज्जा प्रभृति की कोई अपेक्षा नहीं है ? राधे ! मुझे किसी राजा का भय नहीं है, लोक-लज्जा वा कुलशील, यश, प्रतिपत्ति, यहां तक कि प्राण-पर्यन्त की भी अपेक्षा मैं नहीं करता हूं, कारण यह है कि तुमारे कुटिल कटाक्ष रूपी सुतीक्ष्ण बाणाघात से क्षत-विक्षत हृदय में एक मात्र तुम्हारे उत्तुङ्ग पयोधर युगल के दृढ़ आलिङ्गन की आशा से जीवन धारण कर रहा हूं ।। ६७ ॥

श्रीकृष्ण की इस प्रकार बातें सुनकर प्रेम-रस में परम गम्भीराशया श्री राधा, सुना २ कर किञ्चित् अवज्ञा के साथ प्रिय सहचरियों को सम्बोधन करके बोली ॥६८॥

हे सखि ललिते ! नन्दनन्दन को दूर कर । राजा के पुत्र का इस प्रकार असत् आग्रह करना, उसके अनुरूप है क्या ! क्या इनको विदित नहीं है कि जगद्विख्यात मेरा पितृकुल एवं पति कुल है, कभी शत्रु के भी मुख से कुलद्वय का कलंक किसी ने नहीं सुना है, तदनु तुम तो जानती हो-मेरा स्वभाव एवं यश, विख्यात है, इनको अच्छी प्रकार समझादो। कहदो कि रात्रि में

सखि हे वारय व्रजपतिसूनुं ।
नहि परपुरुषे मम मति रुदयेद् यदि कलये निशि भानुं ॥ ध्रु ॥
गोकुलभद्र कृतोऽस्य न युज्यत इयमति दुर्नयलीला ।
राजनि नष्टगुणेऽपि विराजति किमु रतिरसिक सुशीला ॥ ख ॥
तिष्ठति पथमवरूध्य तथाञ्चल मपि कलयितुमनुसारी ।
सकलमिदं विनिवेदय निजसुतमवतु व्रजेश्वरनारी ॥ ग ॥
नास्य कृते बिदधामि सुखं सखि यमुनानीरविगाहं ।
किमफलचाटुशतं कुरुते मयि यदतिनियमकठिनाहम ॥ घ ॥

सूर्य का उदय सम्भव हो सकता है किन्तु वृषभानु नन्दिनी की पर-पुरुष में स्पृहा वा आसक्ति कभी भी संभव नहीं है ।।क।।

गोकुल के मङ्गल रूप में व्रजराज कुमार की ख्याति है अतः उनके लिए इस प्रकार परस्त्री धर्षण लीला कभी उचित नहीं, उन से कहो कि हे सुरत रसपण्डित ! कहिये तो क्या यदि राजा भी दुश्चरित हो, तो क्या कभी कुलवती स्त्री उसकी सेवा कर सकती हैं । ॥ ख ॥

कैसे दुःख की बात है हमारे जाने आने के मार्ग के रोक कर यहाँ खड़े हैं, यदि कोई फन्द काटकर जाना चाहे तो वस्त्राञ्चल ग्रहण करने के लिए पीछे पीछे चलते हैं, ॥ ग ॥

अब आगे सहन करना हमारे लिए असम्भव होगया है, अतः सखि ! यह सब वृत्त व्रजेश्वरी के पास जाकर कहो, वे अपने पुत्र को इस प्रकार की दुर्नीति से रोकें । सखि ! और भी कहना कि इनके उत्पात के कारण हम सब स्वच्छन्दता से यमुना स्नान भी नहीं कर सकती हैं।

इन को समझा कर कहो कि हमारे प्रति व्यर्थ क्यों सो-सो चाटु वाक्य प्रयोग करते हो तुमतो जानती हो कि मेरी प्रतिज्ञा कभी भी मिथ्या नहीं होती ॥ घ ॥

वृन्दावनविपिनेऽति प्रफुल्लित-नव-नव-मल्लिवितानं ।
प्रतिदिनमहमुपयमि कुसुमचय इह प्रतिषेधति यानम् ॥ ङ ॥
निद्रितवति जननिकरे यदि मम गृहमयमेति निशान्ते ।
अहमति जागरणेन कृतस्थितिरपि भवितास्मि निशान्ते ॥ च ॥
यदि नहि नहि वचनेन कथञ्चन धास्यति सखि मम बाहुं ।
कलयसि यदि मम सत्यमहो सखि ! मोहततिं त्वरणाहम् ॥ छ ॥
इति रससार-सरस्वति-वर्णित-राधावचन-विलासम् ।
अति चतुरायित-चारुतरञ्चिरमुपगायत सविलासम् ॥ ज ॥

कथय सखि यशोदानन्दनं राधिका ते
पतति चरणमूले मुग्धबालां क्षमस्व ।

क्या आश्चर्य ! इस बृन्दावन के वनमें कितनी नव मल्लिका खिल रही हैं अतः देव पूजार्थ पुष्प लेने के लिए प्रति दिन यहाँ आती हूँ, किन्तु ये सदा ही बाधा उपस्थित करते हैं ॥ ङ ॥

गुरु जनों से परिवृत गृह में रात्रि को सोती हूँ, वे सब यदि सो जावें एवं आस पास के प्रतिवेशी भी निद्राभिभूत हो जावें, उस अर्धरात्रि में यदि यह मेरे घर में आजावें तो इसभय से रात्रिभर जागृत रहती हूँ ॥ च ॥

सखि ! में तुमसे निश्चय कहती हूँ, बार बार निषेध करने पर भी यदि बलपूर्वक मेरा हस्त ग्रहण करलें तो मूर्छा देवी को छोड़कर दुसरा शरणागत होने का उपाय नही देखती हूँ। (पुष्प चयन प्रभृति वाक्यों से श्री राधा की स्वाभिलाषा प्रतीत होती है) ॥ छ ॥

इस प्रकार रस निर्यास, सुवैदग्धी पूर्ण, अति मनोहर सरस्वती पाद प्रणीत श्रीराधिका के वचन कौशल का रसिक भक्तगण परमानन्द से गान कर के सुखी हों ॥ ज ॥

स्मरवश-कुलजायाः केलिरंगप्रसङ्गात्
विरम कुरु सरामः कानने नित्यखेलाम ॥६६॥
श्रवणेन निपीय राधिका-रसवैदग्ध्यगभीरभारतीम् ।
ललिताथ जगाद निर्भर-प्रणयानन्दरसातिपेशलम् ॥७०॥

गुर्ज्जरीरागेण गीयते ॥

निपतति चरणे गुञ्जाभरणे गोकुलराजकुमारे ।
विधुमुखि भाग्यं परमविमृग्यं किमपरमिह संसारे ॥क॥
श्यामशरीरे मदनाधीरे न कुरु हठ सखि राधे ॥ ध्रु० ॥
निरवधि सदये दुःखितहृदयं प्रकटय करुणास्तोकं ।
न गणय लोकं नाशय शोकं कुरु सस्मितमवलोकम ॥ख॥

हे सखि ! यशोदानन्दन से कहो कि श्रीराधा तुमारे चरण-तल पर पतित हो रही है, अवला, सरला, कुलवाला को क्षमा करो, हे कामुक प्रवर ! तुमसे विनती करती है, कुलवती सती रमणियों के कदर्थन रूप विलास प्रसङ्ग से विरत होओ, बलदेव-चन्द्र के साथ वन में नित्य क्रीड़ा विहार करो ॥६६॥

अनन्तर श्रीललिता देवी श्री राधा के रस चातुर्य पूर्ण परम गम्भीरार्थ सकल वचनों को कर्णाञ्जलि पुट से पानकर प्रेमानन्द रस-विह्वल हृदय से इस प्रकार बोली ॥ ७० ॥

हे चन्द्रमुखि ! गुञ्जाभरण विभूषित रसमय व्रजराज कुमार आपके चरणों में पतित होकर कितनो प्रार्थना विनती करते हैं, कहो तो इस संसार में इससे और परम प्रार्थनीय सौभाग्य क्या हो सकता है ।

यदी कहती हूँ राधे ! कामवाण से प्रपीड़ित श्यामसुन्दर से और हठ मत करो; तुमारे ही अनुगत जन इतना दुःख पाते हैं यह क्या अच्छा प्रतीत होता है ॥ क ॥

हे करुणामयि ! थोड़ी करुणा वितरण करो, सामान्य

परिहृतसकलं प्रियमतिविकलं घन-घन-कृतनिःश्वासं ।
प्रतिपदमधुरं स्मरशरविधुरं जीवय निजपददासं ।।ग।।
मा वद परुषं कुरु मयि न रुषं विरचय न भ्रूभङ्गीं ।
हरिमुखकमले नवरसविमले खेलय लोचनभृङ्गीम् ।।घ।।
दर्शय वदनं विकसितमदनं राकाचन्द्रमनोज्ञं ।
वञ्चय न जनं निजमतिसुजनं ललितानंगरसज्ञम् ।।ङ।।
व्रजपतितनये कृतबहुविनये त्रिभुवनमोहनरूपे ।
नेयमुपेक्षा तव शुभकक्षा जाग्रति मन्मथभूपे ।। च ।।

लोकापेक्षा परित्याग कर हँसते हुए श्रीमुख से दृष्टि निक्षेप कर इनके सब दुःख दूर करो ।। ख ।।

हाय ! बड़े कष्ट की बात है सकल बन्धु-वान्धवों को परित्याग कर एक मात्र आपके चरणाश्रय की इच्छा से अत्यन्त व्याकुल हृदय प्रियतम के प्रति थोड़ा ध्यान दो । देखो ! देखो !! कामवाण से जर्जरित होकर कैसे बड़े २ निश्वास छोड़ रहे हैं, ऐसे परम मधुर रसिक-मुकुटमणि निज दास को एक वार बचाओ ।। ग ।।

वक्र दृष्टि से देखकर अब ऐसे कटु वचन मत कहना, मैं तुमारे हित की बात कहती हूँ मेरे प्रति क्रोध मत करना, नव-रस में परिपूर्ण कृष्ण मुख कमल में अपनी नेत्र रूपी भ्रमरी को खिलाओ ।। घ ।।

तृषित चकोर के समान परम चञ्चल नागरेन्द्र के शारदीय पूर्ण चन्द्र से भी मनोहर काम सुधावर्षी मुख-मण्डल का दर्शन कराओ । मनमोहन मूर्तिमान् शृङ्गार रस-राज परम सुशील को वञ्चित मत करो ।। ङ ।।

हे सखि राधे ! सुनो, महामन्मथ चक्रवर्ती को जागृत रहने पर भी इतने विनयी भुवन मोहन व्रज-युवराज के प्रति इस

निगद रहस्यं दयितवयस्यं परिरचयेङ्गितमल्पं ।
भ्रमदलिपुञ्जं त्वनुनवकुञ्जं कुरु सखि किशलयतल्पं ॥छ॥
श्रुतिहरचरिता मधुरिमभरिता मञ्जुलरसमञ्जूषा ।
रसद-सरस्वति वागतिमधुमती भवतु सतत-श्रुतिभूषा ॥ज॥
त्रससि किमु सखि त्वं नैव पीताम्बरात्तो,
कुचयुगमपरस्य स्पर्शयोग्यं कथञ्चित् ।

प्रकार उपेक्षा आपके लिए अच्छी होगी ऐसा प्रतीत नहीं होता, पश्चात् बहुत दुःख भोगना पड़ेगा ॥ च ॥

यही कहती हूं कि निज प्रिय वयस्य से कुछ तो रहस्य की बातें करो, अल्पमात्र इङ्गित करके शान्त करो, आगे बात यह कि हे रसमयी ! सम्मुखवर्ती भ्रमर माला परिशोभित निभृत निकुञ्ज में मधुर सुकोमल पल्लव शय्या रचना करो ॥ छ ॥

हे रसिक भक्तगण ! श्रवणाकर्षिणी,परम माधुर्य रस पूर्ण, मनोहर रस पेटिका स्वरूपा, श्रीसरस्वती पाद की अति सुमधुरा रसमयी वाणी आपके कर्ण युगल को अलंकृत करें ॥ज॥

ललिता देवी की बात समाप्त हुई न हुई कि श्रीकृष्ण श्रीराधिका के आगे खड़े होकर गर्व से अपनी अभिलाषा प्रकट करते हुए बोले—सखि राधे ! तुम क्यों व्यर्थ भय करती हो, अपने हृदय पर हाथ रख कर कहता हूँ, यह पीताम्बर रसमय कृष्ण के अतिरिक्त तुम्हारे उत्तुङ्ग स्तन युगल को स्पर्शाधिकार अन्य किसी को प्राप्त नहीं है यह निश्चय समझें । क्या कहूँ यह कृष्ण भ्रमर तुमारे बदन कमल की गन्ध से मत्त होकर तुमारे चरणों के चारों ओर भ्रमण कर रहा है । बोलो देखें तुमारे निषेध क्यों सुने । (ग्रन्थकार सरस्वती पाद प्रकरण प्रसङ्ग छोड़ कर किसी

वदन-कमलगन्धैः कृष्णभृङ्गोऽयमंघ्रौ,
भ्रमति तव कथं वा मन्यतां वारणानि ॥७१॥

कोऽयं द्वारि विधुः प्रियालि तदसावालम्बतामम्बरं,
बाले नायक एष ते किल तदा हारान्तरे तिष्ठतु।
मुग्धे माधव एष हन्त ! विपिनन्यस्तः कथं नो भवेद्
राधाया इति वाक्छलेन सहसाश्लेषी हरिः पातु वः॥७२॥

इति सङ्गीतमाधवे चतुरराधेशो नाम
षष्ठः सर्गः॥

एक श्लेष सूचक वाक्य का प्रयोग कर सर्ग की समाप्ति करते हैं, यह उसी श्लोक का अवतरण है) ॥७१॥

श्री राधिका मन्द २ हँसकर सखी से प्रश्न करने लगी, द्वार पर कौन खड़ा है ? सखी कहती है राधे ! विधु है वह अर्थात् कृष्ण। राधा विधु शब्द का अर्थ चन्द्र लेकर कहती है, यदि चन्द्र है तो आकाश में जावें पृथ्वी पर क्यों ? सखी बोली सरले यह है तुमारा नायक, राधिका नायक शब्द का "हार" मध्यगत 'मणि' अर्थ लेकर कहती हैं तब द्वार पर क्यों, हार में रहना चाहिए। सखी कहती है मुग्धे ये माधव हैं–राधिका माधव शब्द का नारायण अर्थ लेकर कहती है, यदि नारायण हैं तो हमारे वृन्दाबन में क्या काम ? (स्वाभिलाष पक्ष में अम्बर=स्तनाभरण वस्त्रविशेष एवं हारान्तर=वक्षःस्थल, एवं हमारे माधव हमारे नागर यदि हैं तो अन्यत्र बाहिर बन में क्यों रहते हैं, कुञ्ज में पधारें, यहां पर यह ध्वनि है) श्रीराधिका के इस प्रकार वाक्य श्लेष द्वारा सहसा आलिङ्गनकारी हरि आप को परमानन्द प्रदान करें॥ ७२॥

सप्तमः सर्गः

मुग्धमाधवः ॥

गतायां राधायां द्रुतपदमपि स्वीयभवनं,
सखी वा न प्रेष्ठं स्वतनुरसमाभाष्य किमपि।
प्रविष्टः श्रीवृन्दावनविपिनमानन्दसदनं,
स गोविन्दो नाविन्दत रुचिमपीन्दोरुदयतः ॥७३॥
न चन्द्रे निस्तन्द्रे न च परमसान्द्रे मलयजे,
न कालिन्दीनीरानिलकनलमालासु स हरिः।
जलार्द्रं स्वंपीताम्बरमपि तनौ न्यस्य न जहौ,
मनागवाधां राधा-विरहदहन-ज्वाल-विकलः ॥७४॥
लोलत्पल्लविनीं विलोक्य मधुपोद्घुष्टां विदूरे लतां,
राधामाह्वयतीति हर्षबिगलत्पीताम्बरो धावितः।

श्रीकृष्ण के अभिलाषापूर्ण सगर्व वचनों को सुनकर श्री राधा, प्रियतम वा निज सखी से मनसिज रस विषयक कोई बात न कहकर अर्थात् कोई संकेत किए बिना ही मानों कुछ सुना ही नहीं इस प्रकार द्रुतगति से अपने भवन को गईं, श्रीराधा विरह कातर श्रीगोविन्द परमानन्द धाम श्रीवृन्दावन में प्रविष्ट हुए किंतु हृदय में किसी प्रकार शान्ति नहीं पा रहे, यहां तक कि चन्द्रोदय को देखकर किसी प्रकार तृप्ति नहीं पा रहे हैं ॥७३॥

सुनिर्मल पूर्णचन्द्र की किरणों से, गाढ़चन्दनादिलेपन एवं यमुनाजल से, शीतल मलय पवन तथा विकसित कमल श्री के दर्शन स्पर्श से, यहाँ तक कि जल से भीजे अपने पीताम्बर को देह में धारण करके भी श्रीराधा की विरहाग्नि ज्वाला से तप्त हृदय श्रीकृष्ण का विरह ताप किञ्चन्मात्र शान्त न हुआ किन्तु उत्तरोत्तर बढता ही गया ॥ ७४ ॥

कालिन्दीकलहंस-कोमलकलध्वानेन लोलेक्षणो,
वारं वारमभूत् प्रतारितमतिः बृन्दावने माधवः ॥ ७५ ॥
वक्षोजं स्तवके मुखं हिमकरे नेत्रं कुरंगीगणे,
नृत्यत्केकिकलाप एव कवरीं नालीषु दोः कन्दलीं।
इत्थं किञ्चन तत्र-तत्र कथमप्यध्यास्य संधुक्षितो,
राधाया ललिताङ्गकानिसम् हरिर्बभ्राम ब्रृन्दावने ॥ ७६ ॥

श्री कृष्णचन्द्र श्रीराधा के विरह में एक वार अधीर हो गए, धीरे धीरे बिचार शक्ति लोप होने लगी पुलिन में बैठकर श्रीराधा के रूप की चिन्ता कर रहे हैं, उसी समय हटात् कुछ दूर गुञ्जित भ्रमर युक्त मन्दपवन से झूलती हुई पत्रविशिष्ट एक लता को देख कर ओहो ये राधा मुझे बुला रही है ऐसा समझकर व्यस्त समस्तभाव से प्रसन्न हो कर दौड़ने लगे। क्या आश्चर्य आनन्द में विभोर हो रहे हैं परिधेय पीताम्बर खसक रहा है इस का ध्यान ही नहीं। कभी यमुनाजलमें कलहंसों की मृदु मृदु ध्वनि सुनकर श्रीराधा की भूषण ध्वनिका भ्रमकर चञ्चल नेत्रों से उस ओर चल रहे हैं पुनः श्रीराधा को न पाकर दुःखित हृदय फिर कर लौट आते हैं, इस प्रकार राधा के विरह में व्याकुल माधव पुनः २ प्रतारित हो रहे हैं ॥७५॥

श्रीराधा विरह कातर श्रीकृष्णचन्द्र वृन्दाबन की तरु लता पशु पक्षी प्रभृति समस्त को श्री राधामय दर्शन करते हैं। पुष्प गुच्छ देख कर उसमें श्रीराधा के स्तन युगल, पूर्णचन्द्र में मुख-मण्डल, हरिणीयों के नयन में नेत्र युगल, नृत्यशील मयूरपुच्छ में केशपाश, पद्म की मृणाल में वाहु युगल, इस प्रकार यत्किंचिन्मात्र सादृश्य देख कर उन २ स्थानों में श्रीराधा के मनोहर अङ्ग सकल का आरोप करके अति लुब्ध हृदय बृन्दावन में भ्रमण कर रहे हैं ॥ ७६ ॥

अथ कुचपरिरम्भचुम्बविम्वाधररसपानमहोत्सवे निमग्नः ।
किमपि हृदि समाहिते पिकालीमदकलितावरुतैः प्रमुग्ध आसीत् ॥
अतः कमलपत्राक्षः कदम्बतलकेतनः ।
विललापातिकरुणं वाष्पगद्गद्या गिरा ॥ ७८ ॥

श्रीरागेण गीयते ।

समभिलषाम्यहमीक्षितुमुज्ज्वल-श्रीमुख-हिमकरविम्बं ;
नयति च हन्त तदन्यदिशं प्रतिनिहितचेलमविलम्बं ॥ क ॥

श्रीकृष्ण वृन्दावन में भ्रमण करते २ कदम्ब के नीचे बैठ कर अनिर्वचनीय रूप में समाधि लगाए हुए ध्यान में श्रीराधा के वक्षोज युगल का आलिङ्गन, चुम्बन, विम्बाधर रस-पान, एवं सम्भोगोत्सव रस में निरन्तर डूबे हैं, उसी समय हठात् मदमत्त कोकिलाएं पञ्चम तान में गान करने लगीं, एवं भ्रमरगण फूल फूल पर मधुर गुञ्जन करने लगे, यह सुन कर तत्काल मूर्छित होगए ॥ ७७ ॥

तदनन्तर पद्मपलाश लोचन, श्रीकृष्णचन्द्र किंचित् स्वस्थ होकर कदम्ब के नीचे बैठे २ वाष्परुद्ध कण्ठ अति करुण स्वर से विलाप करने लगे ॥ ७८ ॥

(हायरे अपना कातर-क्रन्दन किसको सुनाऊँ ? कौन मेरा दुःख दूर करेगा, शून्य अरण्यरोदन किसके हृदय को द्रवित करेगा, नहीं जानता) कैसी दुःख की बात है, कितनी साध करके श्रीराधा के उज्वल मुखचन्द्र को देखने की इच्छा से सन्मुख हुआ, कि राधा वस्त्राञ्चल से ढक कर मुख को दूसरी ओर फिरा लिया, पुनः उस ओर जाकर कितनी कितनी बातें कितना-कितना दुःख निबेदन किया, किंन्तु उनने एक बात भी नहीं कही ॥ क ॥

हरि हरि कथमहमजीवमिदानीम् ।
राधा न वदति मयि बहुशादिनि किमपि मितामपि वाणीम् ॥ध्रु०
सस्पृहमहमभियामि निकटमियमहह चलत्यति दूरं ।
न च शृणुते मम दुःख निवेदनमपि पश्यति नहि क्रूरम् ॥ख॥
यदि कुसुमावचयायैता वनमिह कुसुममहो चिरं ।
नैवास्पृशदपि मदुपहृतं वत किमिदं मधुर चरित्रम् ॥ ग ॥
सहज ह्रियालत्रमपि नोन्नमयति सुन्दरहासमुखेन्दुं ।
किं मनोजनितमहं नवगाहे सान्द्ररसामृतसिन्धुम् ॥ घ ॥
निरवधि दुःसह मन्मथलुब्धकविद्धमनाः प्रलपामि ।
न प्रसीदति वृषभानुकिशोरी किं करवै क्व नु यामि ॥ङ॥

हरि-हरि ! इतनी दुःसह यातना सहकर भी जो मैं जीवित हूँ यह है आश्चर्य ! आहा कितनी स्पृहा कितनी आशा कर मैं उनके पास गया, क्या दुःख ! वे क्यों शीघ्र पाद न्यास से दूर चली गईं । कितना २ दुःख निवेदन किया सुनता तो दूर एक वार प्रखर दृष्टि पर्यन्त से मेरी ओर देखा भी नहीं ॥ख॥

क्या आश्चर्य ! क्या मधुर चरित्र, समझ में भी नहीं आता, फूल तोड़ने के लिए यदि वृन्दाबन में आती है तो मैं आग्रह के साथ कितने अच्छे २ फूल तोड़ कर उनके पास ले जाता हूँ, किन्तु लेने की बात तो दूर वे हाथ से स्पर्श भी नहीं करतीं ॥ ग ॥

स्वाभाविक लज्जा से अवनत सुमधुर हास्य युक्त मुख को मुझे देखकर थोड़ा भी ऊपर नहीं करतीं, अनङ्गोत्सव पूर्ण निविड रस सुधा-सागर में क्या मैं एक वार भी गोता नहीं लगा सकूंगा ॥ घ ॥

निरन्तर सुतीव्र मन्मथ व्याध के बाण से विद्ध हृदय

मणिमयमुद्रिकयाऽतिमनोहर-रत्नोज्ज्वल निजवंश्या ।
परमप्रलोभनमहह कृतं वहु मनुते नैव वयस्या ॥ च ॥
हाहा जीवित न त्रपसे त्वं कथमिह दुश्चरितेन ।
क्षणमपि तां रसधाम विना यत्तिष्ठसि परमसुखेन ॥ छ ॥
इति विरहातुर हरि-परिवेदन-रञ्जित गीतमुदारं ।
गायत सरस सरस्वति विरचितमनुपम-रसनिधिसारम् ॥ज॥
पुरो राधा पश्चादपि च मम राधा तत इत:
स्फुरन्त्येषा सम्यग् वसति मम राधान्तरगता ।
अधश्चोर्द्ध्वं राधा विटपिषु च राधा किमपरं
समस्तं मे राधामयमिदमहो भाति भुवनम् ॥ ७६ ॥

होकर मैं पागल की तरह प्रलाप करता हूँ,किन्तु वृषभानु नन्दिनी राधिका तो कुछ भी प्रसन्न नहीं हो रहीं, मैं अब क्या करूं कहां जाऊँ ! कहीं जाने से मेरे हृदय की ज्वाला निवृत्त होगी, कैसे दु:ख की बात है ! ॥ङ॥

वहुमूल्य रत्न-जटित अँगूठी एवं अति उज्वल रत्न-खचित निज सर्वस्व स्वरूप मुरली उनकी प्रसन्नता के लिए चरणों में अर्पण की, इतनी लुभावनी वस्तु का प्रिय सखी ने एक बार आदर ही न किया ऐसा भी क्या फिर कर भी न देखा ॥च॥

हाय रे निर्लज्ज प्राण ! ऐसी परम रसमयी प्रेम के सागर श्रीराधा के विरह में अब भी तुम सुख से समय बिता रहे हो ? इस दुश्चरित से क्या तुमको लज्जा नहीं आती है ? ॥छ॥

इस प्रकार विरह कातर श्रीकृष्ण के विलाश पूर्ण अतुलनीय रस-सागर का सार स्वरूप रसमय सरस्वती पाद वर्णित मनोहर सङ्गीत का भक्तगण सदा पान कर ॥ ज ॥

(हाय रे ! मैं तो और किसी से मन को स्थिर करने में

कर्हथाकस्मिक उद्भविष्यति मृगीनेत्रो तवात्रागमो
दृष्ट्वा मामतिकातरञ्च करुणा कार्य्यकरी भाविनी।
उत्थाप्योस्मि कदा च वाग्भिरमृतैराश्वास्य धृत्वा करे
हा राधे ! वृषभानुनन्दिनि कदा त्वामङ्कमारोपये ॥ ८० ॥
विना प्राणैः देहः कथमिह भवेत् को नु सलीलं
विना मीनश्चन्द्रो विलसति विना को नु रजनीम्।
विनान्नं का प्राणस्थितिरहह कृष्णोऽपि नितरां
विना राधां प्रेमोन्मदमदनलीला-रसनिधिम् ॥ ८१ ॥

समर्थ नहीं हो रहा हूं) आगे की ओर दृष्टि करके देखता हूँ "राधा" पीछे की ओर 'राधा' जिस ओर देखता हूं चारों ओर 'राधा' स्फुरित हो रही है। क्या कहूँ मेरे हृदय के भीतर प्रवेश करके राधा वास कर रही है। तब क्या 'राधा' कोई जादू विद्या जानतीं हैं ? नीचे की ओर देखूं 'राधा' ऊपर राधा वृक्ष, लता-पता में राधा, अधिक क्या कहूं समस्त जगत् एक मात्र राधामय प्रतिभात हो रहा है ॥ ७६ ॥

हे हरिणीनयने राधे ! मैं अपने इस सौभाग्य को क्या कहूँ जो हठात् तुमारा इस स्थान पर आना सम्भव हो ? केवल आगमन ही नहीं, आर्त जान कर कृपार्द्र हृदय में सुधा विनिन्दित वाक्य आस्वास प्रदान पूर्वक हाथ पकड़ कर उठाओ। हे वृषभानु-नन्दिनी राधे ! मैं तुमारे कर स्पर्श से पुनर्जीवन प्राप्त करते हुए तुम्हें कब गोद में लेकर जीवन, यौवन, धन्य करूंगा ॥ ८० ॥

हे राधे ! मैं तुमसे पूछता हूँ बोलो प्राण भिन्न इस जगत् में देह रह सकता है क्या ? जल के बिना मछली जीवित रहती है क्या ! और पूछता हूँ रात्रि से अतिरिक्त चन्द्र शोभा पाता है

योगीन्द्रा मृगयन्ति यत्पदरजस्तेनापि यन्मृग्यते,
विश्वं येन विमोहितं चलदृशा तस्यापि यन्मोहनम् ।
पूर्णानन्दमयोऽपि यद्रसलवास्वादेनधन्यायते,
तद्धाम स्फुटचम्पकच्छविचिरं राधामिधं पातु वः ॥८२॥

इति सङ्गीतमाधवे मुग्धमाधवो नाम
सप्तमः सर्गः ॥

॥ अष्टमः सर्गः ॥

रसोद्धतमाधवः

अथ व्यचयदुच्चकैश्चतुरचक्रचूडामणि
र्विचिन्त्य रुचिरं चिरं मदचलच्चकोरीदृशं ।
तदुच्चकुचकाञ्चनाचलमुदञ्चितेनोरसा,
निपीडय महिमोच्चयं विरचयन्नुपायावलीम् ॥ ८३ ॥

क्या ? अन्न बिना प्राण रह सकते हैं ! यह समस्त भी सम्भव हो सकता है किन्तु अहह ! प्रेम मदोन्मत्त मदन लीला रस-सागर 'श्रीराधा' बिना 'कृष्ण' किसी प्रकार नहीं बच सकता॥८१॥

योगीन्द्र मुनीन्द्रगण जिनकी चरण रेणु को अन्वेषण करते एवं नहीं पाते, वे जिसका अन्वेषण करते हैं, त्रिजगत् मोहनकारी को भी एक मात्र चञ्चल कटाक्ष से जो मुग्ध करती हैं स्वयं पूर्णानन्द स्वरूप जिनकी एक विन्दु रसास्वादन में अपने को परम कृतार्थ मानते हैं, वही विकसित कनक चम्पक कान्ति 'राधा' नामक वस्तु आपकी निज प्रिय सेवा देकर सुखी करैं॥८२॥

अनन्तर चतुर कुल चूडामणि श्रीनागर शेखर अति मनोहर भाव में बहुकाल विशेष चिन्ता करके मदोन्मत्त चञ्चल खञ्जन नयनी श्री राधा को एवं उनके अति उन्नत स्तन रूप हेमगिरि को अपने अति विशाल वक्षः द्वारा दृढ़ता से निपीडन करके आन-

कदाचित् कालिन्दीजलविलसदिन्दीवरवने,
निलीनो मज्जन्त्यामदकलभलीलो मधुपतिः ।
अनर्घ्यं राधाया विवृतकुचकुम्भोभयतटी-
परिरम्भं रम्भाविजयिलसदूरोरलभत ॥ ८४ ॥
पुरः स्थित्वैकान्ते रचितमथ निर्वाप्य सपदि,
प्रदीपं फुत्कारैः सतमसि गृहे नीलवसनः ।
विमुद्रयास्याम्भोजं न परिधृत-रत्नाभरणकः
कदाचिद्राधाया अकृत परिरम्भोत्सवमसौ ॥ ८५ ॥
क्वचन नवनिकुञ्जे कृष्ण आलक्ष्य सख्या,
तरलितमतिखेलां कृष्यमाणः कदाचित् ।

न्दातिशय उत्पादन करने की इच्छा से अनेक प्रकार उपाय भाव से अन्वेषण करने लगे ॥ ८३ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र यमुना पुलिन में रहकर नाना उपाय अन्वेषण करते २ हठात् एक दिन यमुना के जल में स्फुटित नील-कमल के बन में छिपकर मदमत्त हाथी के बच्चे की तरह विलासी मधुसूदन, निःसङ्कोच स्नान परायणा राम रम्भा-विजयी सुन्दर उरु देश विशिष्टा अर्थात् परम सुन्दरी राधा के निरावृत कुच कुम्भ का अति बहुमूल्य आलिङ्गन प्राप्त करके अपने को कृतार्थ करने लगे ॥ ८४ ॥

किसी दिन नीलाम्बर धारण कर समस्त रत्न भूषणों को त्याग रसिक नागर अति निर्जन श्रीराधा के महल में उपस्थित हुए, वहां उनके आगे खड़े होकर जलते हुए दीपक को फूंक मार कर बुझा दिया, पुनः अन्धकार गृह में दशन पंक्ति की ज्योति के भय से मुख बन्द कर श्रीराधा को दृढ़ आलिङ्गन कर सुख सागर में निमग्न हुए ॥ ८५ ॥

तदतिनिभृतवल्लीमन्दिरान्तर्निलीनां,
सहसितमुपगूह्यानन्दकाष्ठां स लेभे ॥ ८६ ॥
नवयुवतिसुवेशं कारयित्वा कदाचित्,
परमचतरसख्या प्रेषितं प्राणनाथं ।
तदतिमधुररूपेणोच्छलत् प्रेमसिन्धुः
स्वनिकटमुपयातं प्राह राधा विमुग्धा ॥ ८७ ॥

॥ रामकिरीरागेण गीयते ॥

नीलनलिनदल कोमलमुज्ज्वल मंगमधिकसुकुमारं।
मोहनरूपमिदं तव वल्लवि हरति ममान्तरसारम् ॥क॥

एक दिन श्रीवृन्दावन की निभृत निकुञ्ज म सखियों के सहित चञ्चल क्रीड़ा में निमग्न हठात् निभृत लतागृह के भीतर छिपी हुई श्रीराधा को देखकर श्रीकृष्ण वल-पूर्वक उनको आकर्षण करते हुए हँसते २ गाढ़ आलिङ्गन करके परमानन्द सागर में निमग्न हुए ॥ ८६ ॥

एक दिन कोई चतुर सहचरी द्वारा मनमोहिनी नागरी वेश में सुसज्जित एवं प्रेरित प्राणवल्लभको अपने आगे देखकर नागरी ज्ञान से उनके भुवन मोहन रूप दर्शन में उच्छलित प्रेम सागर में निमग्न होकर श्रीराधा प्रेम गद्गद् कण्ठ से उनसे बोलीं ॥८७॥

चन्द्रवदनी ! तुम कौन हो ? कैसा आश्चर्य ! तुम मधुर से भी मधुर नव-नील कमल-दल से भी सुकोमल अति उज्वल एवं परम सुकुमार तुमारे अङ्ग आहा धन्य धन्य !! इतनी रूपवती रमणी जगत में हैं, यह तो मैं नहीं जानती थी, हे गोपिनि ! तुमारे इस भुवन मोहन रूप ने मेरे मन-प्राण हरण कर लिए,तुम मेरे मर्म की देवता हुई मैं एक क्षण मात्र भी तुमसे नेत्र नहीं हटा सकती हूँ, अतः हे भुवन सुन्दरि ! तुम आज से मेरी प्रिय सखी बनो ! यही मेरी इच्छा है ॥ क ॥

विधुमुखि का त्वमहो मधुरे !

प्रियसखी भव मम चारुतरे ॥ ध्रु० ॥

केयमहो तव विश्वविमोहन ललितापांगविभङ्गी ।
जनयति खञ्जन गर्वविभञ्जन-मतिभेयमेति कुरंगी ॥ख॥
कस्य सुतासि चलन्मणिकुण्डल-मण्डित मृदुल कपोले ।
मत्तमतङ्गज-गामिनि नवरति-केलिकलासु विलोले ॥ग॥
मा कुरु वञ्चन-मिह सखि किञ्चन तव पृच्छामि रहस्यं ।
त्वामपि चकित मुदैक्षत किमु हरिरिति मम वाच्यमवश्यं ॥घ॥
लोचनतापहरे सुखवर्षिणि देहि निविड-परिरम्भं ।
तत्प्राप्त्यैक-रसेन मनो मम भजति हरेरुपलम्भम् ॥ ङ ॥

तुमारे अनिर्वचनीय विश्व-मोहनकारी मनोहर कटाक्ष भङ्गि से मत्त खंजन का गर्व विनाश हो जाता है एवं हरिणी भी डर जाती है ॥ ख ॥

चञ्चल मणिमय कुण्डल की हलन से तुमारे सुकोमल दोनों गण्डस्थल कैसी शोभा पा रहे हैं, हे सखि ! कहो तो तुम किसकी पुत्री हो। हे मत्त गजेन्द्रगामिनी ! नव-रति विलास-कला में तुमारे सब अङ्ग जग-मग हो रहे हैं ॥ग॥

हे सखी ! मैं तुमसे एक रहस्य बात पूछती हूँ तुमको मेरी शपथ है कपट वा लज्जा करके मुझ से कुछ मत छिपाना, तथा मुझ से छल मत करना ॥ घ ॥

कहो तो सखी ! रमणी मनचोर "कृष्ण" ने कभी तुमारी ओर चञ्चल नेत्रों से देखा है भाई यह बात मुझ से अवश्य २ कहो कोई कपट मत करो, हे नयनानन्ददायिनि सुखमयी ! आओ एक वार मुझसे दृढ़ आलिङ्गन करके मेरे हृदय का ताप दूर करो,एक वार तुमारा अलिङ्गन पाकर मेरे नव जलधर कान्ति प्राणवल्लभ के स्पर्श का सुख प्राप्त होगा ॥ ङ ॥

हास्यमहो तव लास्यमहो तव वचनमहो मधुधारं।
स्नान-शयन-भोजन-गमनादिषु विहर मया त्वमुदारम् ॥ च ॥
इति वरयुवति वेशधरो हरि-रतिरससिन्धुमगाधाम्।
पुलकितबाहु सहासममोदत चिरमुपगृह्य स राधाम् ॥ छ ॥
मुग्ध सरस्वति गीतमहाद्भुत-माधव-केलिविलासं।
कण्ठतटे कुरु-तातिरसं किल शिथिलयुवतिभुजपाशम् ॥ ज ॥
वितत्य निजमुज्ज्वलं कपिशमुत्तरीयं तले,
तदेकदिशि वंशिकामपि निधाय राधेरितः।
विचित्रकुसुमान्यपातयत नीपमारूढ़वान-
हृदा किमपि भावयन् रसिकशेखरः कर्हिचित् ॥ ८८ ॥

अहा धन्य। तुमारा मृदु हास कैसा मधुर है? तुमारे ठुमक-ठुमक चलना और भी मनोहर है, तुमारे सुधा विनिन्दित मधुर वचन से कर्ण,प्राण,शीतल होते हैं। मैं और क्या कहूँ सखी स्नान, शयन, भोजन, गमन, प्रभृति में तुम मेरे साथ निःसङ्कोच विहार करो। यही इच्छा है ॥ च ॥

सुन्दर युवती बेषधारी श्रीकृष्ण इस प्रकार वचन सुन कर मृदु हँसते-हँसते प्रेम पुलकित शरीर में अगाध रतिरस सागर स्वरूप श्रीराधा को बहुत देर तक आलिङ्गन करते हुए परमानन्द सागर में निमग्न हुए ॥ छ ॥

हे रसिक भक्तगण! राधामाधव के केलि विलास पूर्ण महा रसमय मुग्ध सरस्वती पाद रचित इस गान को कण्ठ तट में करे, अर्थात् सदा गाते रहें इसके प्रभाव से युवती भुज पाश वन्धन शिथिल होगा ॥ ज ॥

किसी एक दिन वृन्दावन में रसिक मुकुटमणि श्री कृष्ण मन में कुछ सोच कर कदम्ब वृक्ष के नीचे अपने अति उज्वल

सख्या तत्र पुरः स्थितां कुलवधूसम्मोहिनीं श्रीहरे
र्वंशीमात्महिताय गोपय तदेत्युक्ते करे न्यस्य ताम ।
नीपे स्तैः परिमण्डितां निजपटाच्छन्नाञ्च शाखान्तरे
लीनां वीक्ष्य ततोऽवतीर्य्य सहसा यान्तीमवारुन्ध सः ॥८६॥
अथातिमधुरानंगरङ्गभङ्गी-मभीरया ।
गिरा मदसुललितं प्राह राधां रसाकुलाम ॥ ९० ॥

॥ श्यामगुर्ज्जरीरागेण गीयते ॥

मणिमयवेणुमुदक्षिपदथ मम नव-संव्यान-मुदारं ।
नीपमनल्पकमपि च सुदूरत इयमकृतातिविसारम् ॥ क ॥

पीत दुपटा को बिछा कर उसके एक ओर वंशी रख कर श्रीराधा के इङ्गित से कदम्ब पर चढ़कर अति अपूर्व अपूर्व पुष्पों को तोड़ कर उस दुपट्टे के ऊपर गिराने लगे ॥ ८८ ॥

उस समय सहचरीगण श्रीराधा से बोलीं-"सखि राधे ! कुलबती सती रमणी विमोहिनी सन्मुख रखी हुई श्रीकृष्ण की इस मुरली को अपने मङ्गल के लिए अपहरण करो" सखियों के इस प्रकार वचन सुन कर उसी अद्भुत कदम्ब कुसुम परिशोभित पीत उत्तरीय द्वारा आच्छादित वंशी को हाथ में लेकर श्रीराधा वृक्ष की शाखा से अपने को छिपा कर चलीं, देख कर श्रीकृष्ण ने व्यस्त समस्त भाव से उसी वृक्ष से उतर कर उनका मार्ग रोक लिया ॥ ८९ ॥

अनन्तर श्रीकृष्ण अति सुमधुर मनसिज कौतुक रङ्ग भङ्गि से परम गाम्भीर्य पूर्ण वाक्य से गर्व सहकार अद्भुत रस लोलुप श्रीराधा से बोले ॥ ९० ॥

इस व्रजपुर में परम चतुरा चौरी नव-किशोरी कौन है, जो मेरे इस वृन्दाबन में विचर रही है ? देखो २ हमारी कैसी सुन्दर

केयं ब्रजपुर-चतुर-सुचौरी।
भ्रमति वने मम ललितकिशोरी॥ ध्रु०॥
मुञ्च ममाञ्चलमिति वहु चञ्चल! लोचनकमलविभङ्गम्।
निगदति हन्त मृषा परिरोदिति कलित-महाद्भुतरङ्गं॥ ख॥
सोढुमखिलमथ वत कञ्चुकगत-द्वितयकदम्बमुदारं।
किमु न ददति विशंकमथापि तु रचयति विविधविकारम्॥ग॥
प्रथयति वत चतुरत्वमहो वरयुवतिश्छद्ममतीयम्।
इदमधुनापि श्लेष्य पृथुकुचभर इति कथमिव कथनीयम्॥घ॥
धेनुगणो मम दूरगतो वत विकलमखिलमपि मित्रं।
द्रुतमर्पय मम परमरसप्रद-कुट्मलयुगमतिचित्रम्॥ङ॥

मणि जटित बंशी, ऐसा सुन्दर नवीन दुपट्टा कहां फेंक दिया है? कितने कष्ट से मैंने मनोहर कदम्ब के फूल तोड़े उनको चारों ओर बिखेर दिया है॥क॥

पुनः कितनी २ चतुरता प्रकट कर रही है क्या आश्चर्य नयन कमल की भङ्गि करके पुनः कहती है "हे अति चञ्चल! मेरा वस्त्राञ्चल छोड़"। धन्य २ पुनः मिथ्या-रोदन करती है॥ख॥

तदनन्तर हमारे द्वारा बहुत कष्ट सहन करना पड़ेगा—यह जान कर भी निःशंक भाव से कञ्चुकी के भीतर अद्भुत कदम्ब के दो पुष्प क्यों छिपा रखे हैं उन्हें क्यों नहीं देती हो, समझ में नहीं आता, और पुनः नाना विकार प्रकाश करती हैं॥ग॥

क्या आश्चर्य! यह अत्यन्त कपटवती रमणी देखता हूँ। अब भी कितने प्रकार की चतुरता विस्तार कर रही है। कैसे विस्मय की बात है, "यह आलिङ्गन योग्य (संयुक्त) स्तन युगल हैं नकि कदम्ब कोरक" ऐसे वचन अब तक कैसे कहे थे॥घ॥

अब मैं स्पष्ट कहता हूँ कि हमारी धेनु दूर बन में चली

तव यदि निश्चय एष न देया हरिरपि दृढमभिमानी ।
अस्य कृतेऽपि च हास्यति जीवनमिति मम नानृतवाणी ॥ च ॥
इति हठपाटित-नवकञ्चुकपट-उल्लसितो वनमाली ।
लब्धमहो इति विविधममोदत राधाकुचयुगशाली ॥ छ ॥
इति रससार-सरस्वतिवर्णित माधवमधुरविलासं ।
विशतु गुरोः पदभक्तिपरश्चिरमुज्ज्वलभावविकाशम् ॥ज॥
पाणिभ्यां पिदधत् कदापि सुदृशः पश्चादुगतो लोचने
स्मेर स्तत्करपल्लवेन ललितं-मुञ्चेति चोक्त्वा धृतः ।
सुप्तायाश्च शनैः शनै र्जघनतं क्षिप्त्वोरसश्चाम्बरं ।
संश्लिष्य प्रलिखन्नखैः स मुमुदे बोधेऽपि मीनीदृशः ॥ ६१ ॥

गई हैं दुःख की बात कहां तक कहूँ ? सखागण मेरे लिए व्याकुल हो रहे हैं अतः हमारे कदम्ब के दो फूल शीघ्र दो ॥ङ॥

यदि तुमारा यही निश्चय है कि हम सहज में नहीं देंगी तो सुनो, यह कृष्ण भी दृढ़ अभिमानी है इन दो कदम्ब के फूलों के लिए अपने प्राण तक परित्याग कर सकता है, किन्तु इन्हें कभी नहीं छोड़ सकता, यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा कभी अन्यथा न होगी ॥ च ॥

ऐसा कह कर हठ पूर्वक अभिनव कञ्चुकी को खोलते हुए बनमाली श्रीराधा के स्तन युगल धारण करके परम उल्लसित चित्त से "हाँ हाँ पा लिये, पा लिये" कह कर हँसने लगे ॥छ॥

इस प्रकार सरस्वतीपाद विरचित रस विनिर्यासमय मधुर भावाढय राधा-गोविन्द के सुमधुर विलास श्रीगुरु चरण भक्ति-परायण व्यक्ति के हृदय में चिरकाल प्रवेश करें ॥ ज ॥

एक दिन श्रीराधा अनमनी होकर प्राणवल्लभ की लीला-विलासादि स्मरण में मग्न थीं । उसी समय हसित वदन श्रीकृष्ण धीरे २ दबे पाँवों से पीछे आकर उनके दोनों नेत्र बन्द कर दिये

राधेऽहं ललिता गतास्मि कपटादुक्त्वेति पत्रावली:
सद्रासा: कुचयोश्चिरं विरचयन्नापीडयन्नुन्मद: ।
तीक्ष्णाग्रै विलिखन्नखैश्च धृतपुंभावोऽतिमुग्धं हसन्
राधाया: सखि किं किमेतदिति तद्वाण्या हरि: पातु व: ॥६२॥

इति सङ्गीतमाधवे रसोद्धतमाधवो नाम
अष्टम: सर्ग: ॥

॥ नवम: सर्ग: ॥

मुदित राधामाधव: ।

एकदा विरचिताद्भुतक्रमं माधवेन रमिता यथासुखं ।
राधिका रसनिमग्नमानसा शोकभागिव सखीमभाषत् ॥६३॥

कि श्रीराधा "ललिते ! छोड़ २ मैंने तुझे पहिचान लिया" कहकर उनके दोनों हाथ पकड़ लिए। पुन: किसी दिन निर्जन स्थान में श्रीराधिका सो रहीं थीं, नागर धीरे २ पास जाकर उनके जघन एवं वक्ष: स्थल के वस्त्र धीरे २ उतार कर दृढ़ आलिङ्गन किया कि राधा जग गईं तो भी नखाघात द्वारा उनके वक्षोज युगल अङ्कित करके परमानन्द प्राप्त किया ॥ ६१ ॥

किसी दिन परम कौतुकी श्रीकृष्ण ललिता के वस्त्र पहिन कर उसी के समान शृङ्गार करके कपट भाव से " राधे " मैं ललिता तुम्हारे शृङ्गार की इच्छा से आई हूँ, ऐसा कहकर उनके स्तन युगल के ऊपर बहुत देर तक पत्रावली रचना करते २ अपना पौरुष भाव धारण कर मदोन्मत्त भाव से श्रीराधा के स्तन युगल संमर्दन एवं तीक्ष्ण नखाग्र द्वारा चिन्हित करके देख "सखि ललिते ! यह क्या करती हो २ ! इस प्रकार श्रीराधा के विस्मय-जनक वाक्य श्रवण करते हुए अति मनोहर भाव से हँसते हुए श्रीकृष्ण आप लोगों को लीला दर्शनादि दान देकर सुखी करें ॥ ६२ ॥

॥ मालवगौडरागेण गीयते ॥

क्वापि गतेऽखिलगृहजन एकल ईदृश मन्दिरगायाः ।
मम समक्षमलक्षित आगत आकुल-बाहुलतायाः ॥ क ॥
सखि हे शृणु मम गतदिननवृत्तं ।
हरि हरि धूर्त्त-शिरोमणि–हरिणा दुःखं बत बहुदत्तं ॥ध्रु० ॥
द्वारि तदैव बहिर्निजगृहपतिमभिसमुदीक्ष्य विहस्ता ।
प्रावेशयमिमसन्तर्गृहमहमात्त सकङ्कणहस्ता ॥ ख ॥
तत्र महामदनोन्मदमतिरयमारभताति कुचेष्टां ।
अस्य सनूपुरकांचिमपानयमपि विषमध्वनि दुष्टां ॥ ग ॥

एक दिन रात्रि में श्रीराधिका प्राणवल्लभ के साथ अनेक प्रकार चातुर्य पूर्ण अभिनव प्रकार उद्भावन करते हुए यथेच्छ भाव से विलास करके रस सागर में निमग्न होकर दूसरे दिन प्रातःकाल श्यामला को देखकर ठीक शोकयुक्त की तरह बन कर बोलीं ॥ ६३ ॥

सखि श्यामले ! कल जिस विपत्ति से रात्रि व्यतीत हुई तुमसे क्या कहूँ ! हरि-हरि ! धूर्त शिरोमणि नागरेन्द्रचन्द्र स्वप्न में अगोचर भाव से जो दुःख देगया उसे कह कर समाप्त नहीं किया जा सकता । क्या कहूँ गुरुजन किसी कार्यवश बाहिर चले गए मैं अति निर्जन गृह में थी, उसी समय एकाकी हठात् अपने सन्मुख देखकर मैं व्याकुल होगई,शरीर हाथ पाँव कांपने लगे॥क॥

ठीक उसी समय बाहिर के द्वार पर अपने गृहपति को देख कर प्राण कण्ठगत, व्यस्त समस्त भाव से पीछे शब्द होगा इस भय से उनके कङ्कण वलय प्रभृति सहित हाथ पकड़ कर एक बार उनको भीतर घर के पहुँचा दिया, पीछे गुरुजन न जाने इसलिए उनके पास मैं भी रही ॥ख॥

कंचुकमच्छिनदखिलदुरोरुहमथ नखरेण निकामं।
दृढ़परिरंभणमकृत तथाधरदंशमहो अविरामं ॥ घ ॥
शिथिलितनीविमबेष्टत दुर्जरमदनमशोन्मदभावं।
कथमपि नाकरवं कर-वारणमहह न नेति च रावं ॥ ङ ॥
चंचलतरमथ पूर्णमनोरथमतिकातर-मृदुवाचं।
विरचित-काकुक्रियां रस-संवृत-तनुरतनोद्रसपाचम् ॥ च ॥
अहमपि विपुल-निचोल-सुसंवृत-सुरत-सुलक्षण-देहं।
आशुगमेनमपनीय भुजगं गृहकोण-गता विरतेहम् ॥छ॥

मेरे भय करने से क्या; उनका तो स्वभाव जानती ही हो, वह मदन मद में उन्मत्त होकर उसी घर के भीतर नाना कुचेष्टाओं को प्रारम्भ करने लगे, उनके नूपुर एवं किंकिणी का भयानक शब्द होने लगा यह देख अस्त-व्यस्त होकर मैंने सब खोलदीं ॥ ग ॥

किन्तु धृष्ट नागर ने बलपूर्वक मेरी कञ्चुकी छिन्न भिन्न करदी, तीव्र नखों के द्वारा उरोज युगल किस प्रकार चित्र-विचित्र कर दिए देख ! इसी से क्या शान्ति ! अनवरत दृढ़ आलिङ्गन, अधर दंशन प्रभृति करने लगे ॥घ॥

पुनः दुर्धर मदनमद में आत्म ज्ञान शून्य होकर मेरे नीवी बन्धन को खोल कर जघन द्वारा इस प्रकार मुझे लपेट लिया कि मैं गृहपति के भय से किसी प्रकार निषेध वाक्य अथवा हाथों से रोकना, आदि न कर सकी अगत्या उनके मनोनुकूल कार्य करने लगी ॥ ङ ॥

रसमय श्यामसुन्दर कुछ देर में पूर्ण मनोरथ होकर अति चञ्चलता से कातरता के साथ बड़ी विनती करते हुए मस्तक झुका कर हाथ जोड़ कर रसवर्षिणी अति मृदु वाणी बोलने लगे ॥ च ॥

मंदतमसि जव-झंकृतनूपुरमस्य वहिः प्रतियाने ।
कोऽयमिति श्रुतजनगदिनाऽगतमहमतिभीतिवितानें ॥ ज ॥
इति नवमधुररसामृतशेवधि राधावचनविलासं ।
कलयितुमहह सरस्वति मानस मनुदिनमिह विधृताशम् ।।झ।।
कृता दृष्टिः क्रूरा कटुवचन-कोटि र्विरचिता,
हसत्येवोन्मत्तः कलयति पुनर्भ्रान्तत इतः ।
अहो धन्यं धन्यं कलित वहुलीलाम्बुजहतिः,
क्व यामः किं कुर्म्मः सखि मम किमेतन्निपतितम् ॥ ६४ ॥

मैं भी चारों ओर देखकर एक बड़े वस्त्र से उस महा कामुक प्रवर के सुरत चिन्हाङ्कित अङ्ग को ढक कर शीघ्र बाहिर कर चुपचाप उस घर के कोने में खड़ी होगई ॥ छ ॥

क्या कहूँ सखी ! थोड़े २ अन्धकार में जल्दी चलने के कारण उनके नूपुर का शब्द सुनकर "कौन है २" इस प्रकार लोग कहने लगे, सुनकर मैं एक बार भयसागर में डूब गई ।।ज।।

इस प्रकार नित्य नव-नवायमान उज्वल रसामृत रस सागर की रत्न स्वरूपा श्रीराधा के वचन विभङ्गि को सुनने के लिए सरस्वती पाद अनुदिन आशा करते हैं ।।झ।।

सखि श्यामले ! कहो मैं क्या करूं, कहाँ जाऊं, कैसी विषम विपत्ति उपस्थित होगई !! यदि गुरूजनों को विदित हो जाय तो मैं क्या उत्तर दूं, क्या कहूँ, कितनी-कितनी तीक्ष्ण दृष्टि से रोका, कोटि-कोटि कटु बचनों से तिरस्कार किया यहाँ तक कि लीला कमल से कई बार आघात किया, किन्तु इन निषेधों को वह क्या सुनें ? वह तो ठीक उन्मन्त की तरह हो हो करके हँसते--हँसते इतस्ततः घूम-घूम कर केवल मुझे देखने लगे ॥ ६४ ॥

कटाक्षा नाक्षिप्ताः कृतमपि न साकूतललित-
स्मितेनोद्यत् कामं किमपि भुजमूलं प्रकटितम् ।
न चानेन स्वैरं हसित परिहासादि विहितं,
कृतं किं मे गोपीततिषु यदयं खेदयति मां ॥ ९५ ॥
सानदं परिचुम्बितं हरि हरि श्रीमन्मुखं नेक्षितं,
संपीडयोल्लिखितं नखैः स्तनतटं शोभा न सा लोकिता ।
नीवी दूरमुदासि हन्त न मनाग् दृष्टा तदूरुच्छविः,
शोचन्नित्थमलक्षितोपि रमितो राधां हरिः पातु वः ॥९६॥

इति सङ्गीतमाधवे मुदितराधामाधवो नाम
नवमः सर्गः ॥

यदि कहो कि बिना तुमारे किसी सङ्केत के क्या वह इस प्रकार कर सकता है ? सखी ! मैं सत्य कहती हूँ-कभी भी मैंने अपनी अभिलाषा का कटाक्ष नहीं किया, उनको देखकर साभिप्राय मृदु-मृदु हास भी नहीं किया । उनकी कामोद्दीपक कोई कला वा बाहुमूल प्रकाश कुछ भी नहीं किया, क्या अधिक कहूँ, किस समय उनके साथ हास्य परिहासादि किया यह भी ध्यान नहीं, मैंने उनका क्या अपराध किया है जिससे कि समस्त गोपियों में मेरी ही इतनी विडम्बना करते हैं ॥ ९५ ॥

हाय हाय !! श्रीराधा के परम सुन्दर मुख का आनन्द के साथ कितनी बार चुम्बन किया यह तो ठीक किन्तु अच्छी प्रकार देखा नहीं । तुङ्ग स्तनद्वय संमर्दन, एवं खर नखाघात से छिन्न-भिन्न किया किन्तु उनकी शोभा अच्छी प्रकार न देखी ! नीवी बन्धन खोलकर दूर फेंकदी किन्तु उनकी जघन कान्ति का थोड़ा भी अवलोकन न किया । हरि-हरि ! मेरा जीवन धिक् !! इस प्रकार सखियों से अलक्षित एवं शोकाकुल श्री राधारमण हरि आप लोगों को अपनी सेवा प्रदान कर कृतार्थ करें ॥ ९६ ॥

दशमः सर्गः

उत्तरल-माधवः ।

भूयोभूयः सुरतसुधया मादयित्वा स राधां,
चित्रोपायै श्चतुरतिलकोऽज्ञात-सारल्यभावां ।
बृन्दाटव्यां पुनरपि तया रंस्यमानो यथेष्टं,
प्रेष्यांचक्रे निजमुरलिकां काकलीमेव कृष्णः ॥ ९७ ॥
सापि श्रुत्वा तमथ विकला मोहनं वेणुनादं,
निष्क्रामन्ती पुनरथ गुरून् द्वारि दृष्ट्वा विशन्ती ।
पूर्वं वज्रायितमपि मनो मार्दवेनातिघूर्णद्,
विभ्राणाथ प्रियसहचरीं क्वापि सोत्कंठमूचे ॥ ९८ ॥

॥ दुःखी बराड़िरागेण गीयते ॥

दिशि दिशि शिखिकुलमतिमदविह्वल-मवलोकय नटलीलं ।
तेन मनो मम बादक-पुरुषं मनुते नवघननीलं ॥ क ॥

चतुर चिन्तामणि श्रीकृष्ण ने परम विकट स्वभावा श्रीराधा को अनेक विस्मय जनक कला-कौशल प्रकाश पूर्वक वार-वार सम्भोग रसामृत के द्वारा उन्मत्तकर, चित्त का क्षोभ निवृत्त न हो जावे अतः पुनः श्रीबृन्दाबन में यथेच्छ रमण की इच्छा से मुरली ध्वनि रूप दूती को प्रेरणा की ॥ ९७ ॥

अनन्तर श्रीराधा श्यामसुन्दर की उसी मोहन मुरली ध्वनि को सुनकर अति व्याकुल हृदय से घर के बाहर निकल कर जाने की इच्छा की, द्वार पर गुरुजनों को खड़ा देखकर घर में प्रवेश करती हैं, इससे पूर्व बज्र की तरह कठिन भी वेणुनाद सुनकर द्रवीभूत होकर मन चञ्चल होगया, और धैर्य न रखकर किसी निर्जन स्थान में अपनी प्रिय सहचरी से कहने लगीं ॥ ९८ ॥

प्राण सखि ! अति कातर मुझको जहां-वही मन प्राण

प्राणसखि कुरु मम जीवनदानं
त्वरिततरं नय मामतिविधुरां यत्र मुरली-कलगानम् ॥ ध्रु० ॥
उच्चाटनमतिमोहनमादन–मन्त्रमिवाति सुसिद्धं ।
पठति युवतिजन-वैरि-मदन इव हृदि कुरुते शरविद्धं ॥ख॥
यस्य मधुरतररसभरिताधर-सीधु-सुधा-लहरीयं ।
ध्वनिरूपिणी मम श्रुतिपुटपूरिणी लुम्पति गृह करणीयं ॥ग॥
निरवधि हृद् विकलीकुरुते मम जनयति विषमिव गेहं ।
तत्पदमूले द्रुतमधुनैव हि न्यस्यमिदं निजदेहं ॥घ॥

को मत्त करने वाला मनोहर मुरली का गान हो रहा है, अति शीघ्र मुझे वहां ले जाकर मुझे जीवन दान करो अन्यथा मेरा और उपाय नहीं, केवल मैं अकेली नहीं यह देख बंशी ध्वनि सुनकर चारों ओर मयूर कैसे मद-विह्वल होकर नृत्य कर रहे हैं। यह सब देख मनमें आता है कि बंशी वजाने वाले पुरुष नव-जलधर कान्ति श्यामसुन्दर को छोड़कर दूसरा कोई नहीं है ॥क॥

क्या कहूँ वह उच्चाटन, मोहन, मादन प्रभृति सिद्धमन्त्रों की भाँति पढ़ रही है, और ब्रजयुवतीजन की परम शत्रु मदन की तरह हृदय में वाण छेदती है ॥ख॥

जिस की मधुर से सुमधुर रस परिपूर्ण अधरामृत सागर की तरङ्गमाला के समान ध्वनि कर्ण कुहर में प्रविष्ट होकर हमारे सब गृह कार्यों को विलुप्त कर देती है ॥ग॥

निरन्तर हृदय को व्याकुल कर देती है यहाँ तक कि हमारा घर विष के समान प्रतीत होता है हे सखी ! हमारे मन प्राणों को तो वह वलपूर्वक हरण कर लेती है, अतः अपने इस देह को उनके चरणों में समर्पण कराकर तुम इस वन्धु कृत्य को करो ॥घ॥

प्रेम महाम्वुधिरुच्छलितो मम यन्मुरली-रस पाने ।
प्राणाधिकतम एष प्रियो मम परमिह किमपि न जाने ॥ङ॥
किं मम शीलं कीर्त्तिकुलं वा का मम गुरुजनलज्जा ।
विषमकुसुमशर-विषशर-वर्षण-जर्जरिता मम मज्जा ॥च॥
चतुरतया यदि नयति न भवती पश्य चलास्म्यहमेषा ।
तादृशमेव विलक्ष्य निरंकुशमति-मद-विह्वल-वेशा ॥छ॥
राधापद-गति-दीन-सरस्वतीरन्तर्वहति सदाशां ।
स्वप्रियमिथुन-मिलन-करणोत्सुकमतिरतिभावविकाशां ॥ज॥
दन्ते करोमि तृणकं चरणे पतामि,
क्रीतां कुरु प्रियसखि प्रणयेनराधां ।

आगे की बात तुम से कहती हूँ—जिसका मुरली ध्वनि रूपरस रस पान करने मात्र से हमारा महा प्रेम सागर उच्छलित होगया है। एक मात्र उसी हमारे प्राणाधिक प्रियतम एवं आश्रय स्वरूप, को छोड़ कर और मैं कुछ नही जानती हूँ ॥ङ॥

हमारी सुशीलता एवं सतीत्व क्या करेगा ? मेरे यश के स्थान पर अपयश हो, और गुरुजनों का भय एवं लज्जा मेरा क्या करेगी ? हे सखी ! मैं अपने में नहीं हूं। अखण्ड प्रतापशाली मन्मथ चक्रवर्ती के विषमय बाण वर्षण से मेरा मर्म स्थल जर्जरित होगया है ॥च॥

तुम यदि विशेष चतुरता के साथ मुझे उस मन मोहन मुरली वादक पुरुष के समीप न ले जाओगी तो देखना कि मैं पागल की तरह मदोन्मत्त बेश से अकेली ही चली जाती हूँ ॥छ॥

श्रीराधाचरण एक मात्र जिनके सर्वस्व हैं, ऐसे दीन-हीन सरस्वतीपाद निज प्रियतम रसिक युगल के मिलन करने के लिए लुब्ध चित्त होकर अन्तःकरण में मधुर भाव प्रकाशिनी आशा को निरन्तर धारण करते हैं ॥ ज ॥

त्वं श्यामसुन्दरकिशोरवरं प्रदर्श्य,
मज्जीवितं गतमिवाद्य निवर्त्तयेथाः ॥ ९९ ॥
अयि सखि ! कति नोक्तं पूर्वमेतन्मया ते,
हरिरयमभिमानी कीदृशो नाद्य जाने।
भवतु तदपि यामि त्वत्कृते प्राणसारे, !
प्रथममिममुदीक्ष्य त्वां ततोऽहं नयामि ॥ १०० ॥
इति निगद्य सखी सुखदायिनी
हरिमुपेत्य कदम्बतले स्थितम्।
न परिलोक्य पुरेव कृतादरं,
रसिकमौलिमभाषत कातरं ॥ १०१ ॥

प्रिय सखि श्यामले ! मैं दांतों में तिनका दबाकर तेरे चरणों में गिरती हूँ तुम प्रेम से इस दुःखिनी राधा को चिरकाल के लिए खरीद लो ! उस नव-किशोर वर श्याम सुन्दर को इस समय एकवार दर्शन कराकर मेरे गत प्राय जीवन को तुम एक वार लौटालाओ ॥ ९९ ॥

श्रीराधा की इस प्रकार कातरता सुन कर परम दुःखित चित्त से श्यामला बोलीं, सखी राधे ! मैं तो तुमसे कई वार कह चुकी हूँ हे सखी ! यह कृष्ण बड़े ही अभिमानी है, उस समय मेरी बातें नहीं सुनी थीं ! जोहो, अब वे किस भाव में हैं यह तो विदित नहीं। हे प्राण कोटि प्रियतमे राधे ! तथापि मैं तुमारे प्रिय कार्य के लिए जाती हूँ। प्रथम यह जानूं कि वे किस अवस्था में हैं एक बार देख कर पीछे तुम को ले चलूंगी ॥ १०० ॥

परम सुखमयी श्यामला श्रीराधा के आगे इस प्रकार कहकर वृन्दावन में गई और वहां जाकर कदम्ब के नीचे बैठे हुए श्रीकृष्ण से मिलीं। पूर्ववत् विशेष आदर करते हुए न देखकर रसिक शेखर श्रीकृष्ण से कातर भाव से कहने लगीं ॥ १०१ ॥

॥ देशाख्यरागेण गीयते ॥

उदयति शीतकरे वररामा । मुखमुन्नमयति चुम्बितुकामा ॥ क ॥
राधिका रमते त्वयि माधव ॥ ध्रु० ॥
यदि कलयति तव वेणुनिनादं । गणयति नैव तदा जनवादं ॥ख॥
भवति कलितनवमेघविलासा । उद्यत-कृतपरिरम्भण-भराशा ॥ग॥
यदि दृशि निपतति-चन्द्रकमाला । परम-चमत्कृतिमंचति बाला ।घ
लिखति रहसि तव रूपमुदारं । मुहुरिह घटयति निजकुचभारं ॥ङ॥
वहिरधिगतभवदमृतसुनामा । विकलविकलमिव धावति वामा॥च॥

हे माधव ! प्रेममयी श्रीराधिका घर में वा बन में कहीं भी रहें, सर्वत्र केवल आपको ही देखतीं एवं आप में ही रमण करती हैं क्या कहूँ ठीक पागल के समान हो रहीं हैं। पूर्णचन्द्र को उदित देख रमणी मुकटमणि आपका मुख-मण्डल जान कर चुम्बन करने के लिए ऊपर को मुख उठा रही हैं ॥क॥

यदि तुमारी बंशी ध्वनि एक वार सुन लोक लज्जा गुरु-जन भय आदि की बात भूल कर पगली की तरह घर से बाहर निकली ॥ ख ॥

यदि वा आकाश में नव मेघ घटा छाई हुई देख इस प्रकार दृढ़ आलिङ्गन की अभिलाषा से उद्योग करने लगी ॥ग॥

यदि किसी प्रकार मयूर की पंख दृष्टिगोचर हो जाय तो इसी प्रकार तुमारा मुकुट है ऐसा सोच कर विमुग्ध भाव से परम चमत्कृति लाभ करती है ॥ ध ॥

निर्जन में रहकर तुमारे परम मोहन चित्र के लिखकर पुनः सुदृढ़ आलिङ्गन करती है ॥ ङ ॥

प्रसङ्ग क्रम से बाहिर तुमारा नाम सुनने मात्र से अत्यंत व्याकुल होकर उस ओर को ही दौड़ती है ॥ च ॥

प्रपतति चातितरामतिमुग्धा । तव रतिकेलि-समाधिनिरुद्धा ॥छ॥
त्वयि परमामृत-वपुषि विलग्ना । प्रणय सुधारस सिंधु निमग्न॥॥ज॥
इति रस वलित सरस्वति गीतं । जनयति हरिपदभावमभीतम् ॥झ॥
राधा राधेत्यसकृदधुनैवात्र गायं स्त्वमासीः,
किं ममारादहह कलयन् कृष्ण ! तूष्णीं स्थितोऽसि ?
राधायां ते सहज-मधुर-प्रेम-साम्राज्य-लक्ष्मीः,
ख्यातैवातो न कुरु कपटं दर्शयास्यं सहास्यं ॥ १०२ ॥
नव निभृतनिकुञ्जं सोऽथ सकेतयित्वा,
दयितसहचरीं तां प्राहिणोद् राधिकायाः ।
स्खलित-पदममन्दानन्दवेगात्तयापि,
द्रुततरमभिगम्य प्राणसख्यै न्यवेदि ॥ १०३ ॥

आपके साथ विलासादि की चिन्ता करते २ चैतन्य शून्य हो जाती हैं, मूर्छित भी हो जाती हैं ॥ छ ॥

और कभी स्फूर्ति में तुमारे इस अमृतमय देह को आलिङ्गन कर के सुधा सागर में निमग्न हो जाती हैं ॥ज॥

और कहां तक कहूं सोते उठते रात दिन वह मुग्धा राधा एक मात्र तुम को छोड़ कर और कुछ नहीं जानती, अब तुमको जो अच्छा लगे करो। इस प्रकार परम रस पूर्ण श्रीसरस्वती पाद के द्वारा रचित सङ्गीत का पाठ करने वाले श्रीहरि चरण कमल में परम मधुर भाव प्राप्त करेंगे ॥झ॥

हे कृष्ण ! तुम इस मुरली में "राधा राधा" गाते थे, क्या आश्चर्य मुझे देख कर क्यों चुप हो गए ? तुम जितना छिपाते हो, छिपाओ ! किन्तु "राधा" विषयक आपकी उज्वल प्रेम सम्पत्ति विख्यात ही है। इस लिए कहती हूँ कि नागर ! कपटता को त्याग एक वार प्रसन्नमुख दिखाओ ॥१०२॥

नामैवोत्तरलं करोति परमोन्मत्तां च कांचीरवो,
राधायाश्चकितेक्षनां प्रकुरुते मुग्धा तदंगच्छटा।
तेनैकान्तगतं चरिष्यति परं चाक्रम्य हृद्बाधते,
सा मां त्व ललिते चलेति निगदन् सास्त्रो हरिः पातु वः ॥१०४॥

इति श्री सङ्गीतमाधवे उत्तरलमाधवो नाम
दशमः सर्गः ॥

इस प्रकार प्रेमपूर्ण वाणी सुन कर श्री कृष्ण अति उत्कण्ठित भाव से मिलने के लिए नव निभृत निकुञ्ज का संकेत कर श्रीराधा की प्रिय सहचरी को प्रेरणा की, उस सखी ने भी अत्यन्त आनन्द वेग में अधैर्य होकर स्खलित गति से अति शीघ्र प्राणमयी श्रीराधा के निकट आकर जैसा का जैसा वृतान्त निवेदन किया ॥ १०३ ॥

किसी समय ललिता के साथ श्रीकृष्ण के विरह कातरता पूर्ण वचन वर्णन कर कवि समाप्त करते हैं। हे ललिते ! श्रीराधा का नाम मुझे परम चञ्चल कर देता है, उनकी सुमधुर काञ्ची ध्वनि मुझे एक बार ज्ञान शून्य कर देती है । क्या कहूँ उनकी मनोहर अङ्ग कान्ति मेरे नेत्रों में इस प्रकार बसी है जहां २ देखता हूं केवल राधामय ही दीखता है। उनके भय से यदि निर्जन स्थान पर जाता हूँ तो वहां भी वह आक्रमण कर विहार करती है, एवं मेरे हृदय में अत्यन्त वेदना उपस्थित करती हैं । अतः अब मैं धैर्य धारण करने में असमर्थ हूं, ललिते ! तुम शीघ्र वहां जाओ। साश्रु नयन गद्गद कण्ठ इस प्रकार कहने वाले हरि आप लोगों की रक्षा करें अर्थात् लीलादि दर्शन दान द्वारा परिपुष्ट करें ॥ १०४ ॥

॥ एकादशः सर्गः ॥

विह्वल राधिकः ॥

अथ विहितविलम्बे दुर्वहश्रीणिविम्बे,
परिजनवति राधानाम्नि जीवावलम्बे ।
प्रमद-मदनवेगोद्भ्रान्तचेता विचिन्वन् ,
उपनिजगृहमासीन्नीपखंडे विपण्णः ॥ १०५ ॥
सख्या च नीता गुरुमध्यतोपि
केनापि चातुर्य्यरसेन राधा ।
संकेतकुंजे मुदितालिपुञ्जे,
प्रियं न दृष्ट्वा विकला बभूव ॥ १०६ ॥
कृत्वाथ तस्याः परिसान्त्वनं सखी,
सद्यः प्रकोष्ठच्युतकंकणायाः ।
गत्वा नटद्बर्हि-कदम्ब दर्शिणं,
कदम्बगंडे स हरिमाबभाषे ॥ १०७ ॥

इस प्रकार संकेत वाक्य से सखी को भेजकर श्रीराधा के आगमन की प्रतीक्षा में श्रीकृष्ण निकुञ्ज में प्रतीक्षा कर रहे थे। किन्तु जीवन रक्षा की एक मात्र अवलम्बन स्वरूपा वृहन्नितम्बिनी सहचरी गण वेष्टिता श्रीराधा के आगमन में कुछ बिलम्ब हुआ। सुदुर्धर्षि मदन-मद वेग में व्याकुल चित्त होकर कृष्ण चारों ओर अन्वेषण करते २ निकुञ्ज गृह समीप कदम्ब खण्ड में अति दुःखी हृदय से बैठे थे ॥ १०५ ॥

इस ओर सखियों के किसी अनिर्वचनीय चातुर्य प्रकाश पूर्वक गुरुजनों के मध्य से भ्रमरगण गुञ्जित संकेत कुञ्जमें अभिसारिता राधा, कुञ्ज में श्रीकृष्ण को न देखकर अत्यन्त व्याकुल हुई ॥ १०६ ॥

कमलिनी श्रीराधा विरह ताप से इतनी कृश हुई कि

॥ दुःखी वराड़ीरागेण गीयते ॥

पश्यति दिशि दिशि श्यामलसुन्दर वेणुरवं कवणयन्तं।
स्मरतरलं शिखिपिञ्छधरं मुहुरलमालिंग्य हसन्तं ॥क॥
माधव प्राणसखी मम राधा।
अहह विषीदति निरवधि वर्द्धित-दुःसहमन्मथबाधा ॥ध्रु०॥
क्षणमपि याति वहिः क्षणमन्तः प्रविशति कुंज कुटीरं।
उच्चाटनमपि भजति प्रिया तव संवृणुते न च चीरं ॥ख॥
हा नाथेति महाकरुणं मुहुरतिविकलं विलपन्ती।
सिंचति नेत्रजलेन लतातरुनिकरं क्षितिषु लुठंती ॥ग॥

मणिबन्ध से उसी समय कङ्कण खसक कर गिर गया, देखकर सखी विशेष भाव से शान्त्वना देती हुई कृष्ण के अन्वेषण के लिए बाहिर निकल समीप कदम्ब खण्ड में नृत्य परायण मयूर वृन्द दर्शनकारी कृष्ण से बोली ॥ १०७ ॥

अत्यन्त खेद के-साथ सखी लिलता कहती है, हे माधव! मेरी प्राणमयी श्रीराधा-निरन्तर वृद्धि शील काम के बाणों से पीड़ित होकर खिन्न हो रही है। हे श्यामसुन्दर वंशीवादन तत्पर, कामोन्मत्त, परमचञ्चल, मयूरमुकुट धारी हास्यपरायण तुमारा स्फूर्ति में बार-बार अति आलिङ्गन कर चारो ओर दर्शन करती है ॥ क ॥

कभी उत्कठिण्त होकर द्रुतगति से वाहिर जाती है, पुनः वहां न पाकर कुञ्ज में आती है। तुमारी प्रेयसी महा व्याकुल होरही है यहां तक कि अङ्ग के गिरते वस्त्रों को भी नहीं सँभालती ॥ ख ॥

अत्यन्त व्याकुल हो कर आर्तस्वर से "हा नाथ प्राण-वल्लभ"! कहकर बार-बार विलाप करते-करते पृथ्वी पर लेटती हुई

क्षणमपि धावति निपतति मूर्च्छति विलुलितकुन्तलभारं ।
पटमवपाटय भनक्ति च वलयं त्रोटति मणिमयहारं ।।घ।।
मृगयति कामपि वल्लीमथेच्छति यमुनागमनमजस्रम् ।
गच्छ गृहं सखि तच्चरणे कुरु रतिमिति गदति च सास्रम् ।।ङ।।
त्वत्पदनिविड़प्रेमरसविह्वलहृदया हन्त न जाने ।
जीवति नाथ ! चिरागमने मम नेति च बाधायाने ।।च।।
मोहन नित्यमहारसदं किल युवयो र्वेद्मि स्वभावं ।
यदि निजजीवकलां कलयिष्यसि चंचल चल कृतभावं ।। छ ।।

इतनी अश्रुधारा बरसाती है कि लता तरु प्रभृति सिञ्चित हो जाते हैं ।। ग ।।

पुनः कभी बिखरे हुए केश से दौड़ती है, विरहाधिक होने के कारण अङ्ग विकलता से गिर पड़ती हैं. कभी मूर्च्छित होती हैं पुनः उन्मत्त की तरह शरीर के वस्त्रों को फेंकती हैं । हाथ के वलय, प्रभृति भूषणों को तोड़कर दूर फेंकती हैं, गले का हार तोड़ती हैं ।। घ ।।

प्राण परित्याग के लिए किसी लता को अन्वेषण करती हैं कभी दौड़कर यमुनाजल में डूबती हैं, कभी साश्रु गद्गद कण्ठ से कहती है कि-सखि । घर चली जा, उँनके चरणों में मेरी रति हो' ऐसा आशीर्वाद कर ।। ङ ।।

हे नाथ ! मुझे देर हुई उसे छोड़े, वह आपके चरणों में इस प्रकार प्रगाढ़ प्रेमरस में विह्वल हृदया, अब तक जीवित है या नहीं, नहीं कह सकती ।। च ।।

हे मोहन ! तुमारे दोनों के हृदय अति कोमल हैं एवं निरन्तर महारस प्रद है यह मैं जानती हूँ । तुमारे असाध्य कुछ नहीं । हे चपल संकेत करके इस प्रकार करना क्या तुम्हें उचित

इति रसलोल सरस्वति वर्णित राधा-प्रिय-सखीभाषा ।
विलसति माधव-जनित-महाद्भुत-प्रेमोत्कंठविलासा ॥ ज ॥
रुदन्ति मृगपक्षिणो न विकशन्ति वल्लिद्रुमा:,
शरद्विमलचन्द्रमा मलिनभावमालम्बते ।
वहन्ति न समीरणाः सहजशीतलामोदिनः,
क्षणाद्विरहकातरे नवरसप्रदे धामनि ॥ १०८ ॥
सहसा समुपेत्य माधवस्ततउद्वेल इवामृताम्बुधिः ।
परिरम्भणचुम्बनादिना रमणीं तां रमयांबभूव सः ॥१०६॥
लज्जा-संकुचिता भृशं नवलयो मौनैकवृत्तिप्रिया-
लापैकोत्सुकयोः सुपत्रशयना संस्पृग्बलात् कर्षिणोः ।

है ? जो हो ! यदि अपनी जीवितेश्वरी के देखने की इच्छा हो तो परम अनुराग से मेरे साथ चलो ॥ छ ॥

इस प्रकार रस लोभी सरस्वती पाद वर्णित श्रीराधा की प्रिय सखी के मुख की बातें माधव की परम प्रेम रसोत्कण्ठा उत्पन्न करें ॥ ज ॥

मधुर रसदायिनी लावण्य मूर्ति श्रीराधा क्षण काल विरह में कातर हुई, पशु पक्षिगण रोने लगे, वृक्षलता सब मुरझा गईं। सुनिर्मल शारदीय पूर्णचन्द्र, मलिनता का अवलम्बन कर रहा है। स्वाभाविक सुगन्धित शीतल वायु प्रवाहित नहीं हो रही और क्या कहूँ, श्रीराधिका की कातरता से आज समस्त वृन्दावन विषादित है ॥ १०८ ॥

यह सब सुनकर उच्छलित सुधा-सागर के समान रसिक नागर श्रीकृष्ण ने कदम्ब खण्ड से अति शीघ्र निकुञ्ज में आकर हठात् आलिङ्गन चुम्बनादि द्वारा विलासिनी श्रीराधा के साथ पूर्ण रूप से सम्भोग किया ॥ १०६ ॥

श्रीराधा माधव के नव-नवायमान अद्भुत रति क्रिया का

प्रत्याख्यान परायणा अहवतो दैनोक्ति निष्पीड़िनो
राधामाधवयो र्नवे निधुवने कोऽपि क्रमः पातु वः ॥११०॥

इति सङ्गीतमाधवे विह्वलराधिकः
नामैकादशः सर्गः ॥

॥ द्वादशः सर्गः ॥

तत्तद्विचित्ररतिकेलिभिरुल्लसन्ती,
स्मित्वा कदाचिदिति कान्तमुवाच राधा।
आकृष्य वेणुविरुतै र्व्रजभू-किशोरी,
र्मद्रासिका विरचय प्रिय ! रासगोष्ठीं ॥ १११ ॥

कोई अनिर्वचनीय क्रम सकल अर्थात् कला-कौशल तुम लोगों के परिपुष्ट करै। क्या वह क्रम है, सुनो, अकस्मात् इस प्रकार विलासावसान में श्रीराधा लज्जा से अति संकुचिता, किन्तु नागरेन्द्र परम चाञ्चल्य प्रकाश करते हैं; श्रीराधा मौन हैं, किंतु नागर प्रिय आलाप के लिए परम उत्कण्ठित एवं व्यग्र। श्रीराधा-पल्लव शय्या में शयनोत्सुका, किन्तु नागरेन्द्र बल पूर्वक आकर्षण कर अपने वक्षःस्थल में स्थापन करते हैं, राधा रोकती हैं, नागर अत्यन्त आग्रह पूर्वक मिलते हैं। राधा जितनी दैन्योक्ति प्रकाश करती हैं धृष्ट नागर उतनी ही निष्पीडन संमर्दनादि द्वारा अपनी अभिलाषा को पूरण करने में व्यग्र होते हैं ॥ ११० ॥

किसी समय इस प्रकार विविध विलास कौतुकादि द्वारा परमानन्दिता श्रीराधा मृदु हँसते २ प्राणनाथ श्रीकृष्ण के प्रति बोलीं—हे प्रियतम ! तुम मुरली वाद्य के कैसे पारदर्शी हो, एक वार दिखाओ तो;बंशीके शब्दसे केवल हमारी सहचरी ब्रज नव-किशोरीगण को आकर्षण कर सुमधुर रास मण्डली रच कर नृत्य भङ्गि से परम चातुर्य प्रकाश पूर्वक एक साथ सब के साथ विलास करो ॥ १११ ॥

अथ गायति माधवे भुजं दयितांसे विनिधाय वेणुना ।
परमाद्भुतदर्शनोच्छलत्कुतुकेन प्रियमाह राधिका ॥११२॥

॥ ललितरागेण गीयते ॥

न वहति सरिदपि सहजजवेन । स्थगति शशी दिवि निजविभवेन॥क॥
प्रिय ! गानरसे तव वेणुना ॥ध्रु०॥
द्रवमयवपुरिह धृतमुपलेन । जनयति विस्मयमतिकठिनेन ॥ ख ॥
सकलभुवनमिदममृतभरेण । भवति भरितमिव मधुरतरेण ॥ग॥
तव पद-सरसिज-कृत-भवनेन । चलति गृहं नहि युवतिजनेन ॥ घ ॥
धृत-तृण-कवल-मुकुल-नयनेन । लसति वनं तव सुरभिगणेन ॥ ङ ॥

अनन्तर श्रीकृष्ण प्राणेश्वरी के स्कन्ध देश में भुजा आरोपण कर वंशी बजाने लगे; चारों ओर अपरूप दर्शन कर श्रीराधा परम उत्सुकता के साथ वल्लभ से बोलीं ॥ ११२ ॥

हे प्रियतम ! वंशी के द्वारा तुमारे मधुरतर गान रस से विमुग्ध होकर यमुनाजी अपने स्वाभाविक वेग से प्रवाहित नहीं हो रहीं । यह देख चन्द्रमा सोलह कलाओं के सहित स्थिर हो रहा है ॥ क ॥

तुमारे मुरली के स्वर से अति कठिन पाषाण भी द्रवित वपु धारण कर अर्थात् पिघल कर सबको विस्मित कर रहा है॥ख॥

तुमारे मुरली के स्वर से यह त्रिभुवन मधुर से भी मधुर अमृत रस में परिपूर्ण के समान प्रतीत हो रहा है ॥ग॥

ध्वनि सुनकर व्रज नव-किशोरीगण विमुग्ध होकर पुनः घर जाने में समर्थ नहीं है ॥ घ ॥

बंशी सुनकर तुमारे धेनु वत्सगण तृण-कवल (घास) मुख में दवाकर आधे खुले नेत्र से कैसी वृन्दावन की शोभा बढ़ा रही हैं देखो ॥ ङ ॥

बिसृजति कलकल-मतुत्त-रसेन । प्रमद-खगावलिरलमलसेन ॥च॥
स्थिरं चरमिह भवति कलनेन । हृदि परमसुखामृतमिलनेन ॥ ङ ॥
परपदरतमुनिरनुतपनेन । भवति कृती तव पदनयनेन ॥ ज ॥
मुदित सरस्वति गीत मुखेन । बिशत महिम्नि हरेः स्वसुखेन ॥झ ॥
अन्योन्याबद्धहस्तै रधिकृतवलयै र्गोपबालाकदम्बैः,
कालिन्दीये विराजत्सुविपुलपुलिने मन्दसद्गन्धवाहे ।
एकैकस्याः स एकोप्यतिचतुरतया कंठसंश्लेषि बाहु
र्मध्ये मुग्धः स राधारतिरभसपर स्तत्र रासे ननर्त्त ॥ ११३ ॥
एका गोपी राधिका-सख्यहीना,
भर्त्तारुद्धा तत्क्षणोज् जृम्भितार्त्तिः ।

मधुर रस में निमग्न उन्मत्त पक्षिगण अत्यन्त आलस्य में नीरव होकर तुमारे मुख को ओर देख रहे हैं ॥च॥

प्राणवल्लभ ! देखो २; तुमारी वंशीध्वनि रूप परमानन्दामृत हृदय से स्पर्श होकर बृन्दाबन के वृक्षलता प्रभृति स्थावरगण भी ठीक जंगम की तरह हो रहे हैं । ॥छ॥

उसके श्रवण से अनुतप्त ब्रह्मानन्द निमग्न मुनिगण भी तुमारे चरण दर्शन से अपने को कृतार्थ मानते हैं ॥ज॥

हे रसिक भक्तगण ! परमानन्दित सरस्वतीपाद के इस सुन्दर संगीत के आस्वादन से आत्मानन्द में निमग्न होकर श्रीहरि के महिमा सागर में डूब जाओ ॥झ॥

मृदु मन्द सुगन्धि मलय पवन परि सेवित सुविस्तृत सुन्दर यमुना के पुलिन में परस्पर हाथ पकड़ कर मण्डली बन्धन से नृत्यपरायण गोपी गण के सहित एक होकर नृत्य चातुर्य से एक साथ प्रत्येक के कण्ठ को आलिङ्गन करते हुए अति मनोहर भाव से श्रीराधा के साथ केलिविलास शील श्रीकृष्ण उस रास मण्डली में नृत्य कर रहे हैं ॥११३॥

भिन्न यूथ की कोई गोपी अपने पति के द्वारा घरमें बन्द

सिद्धा राधामाधव-ध्यान योगाद् ।
रासे विष्टा निर्गतार्थैवमूचे ॥ ११४ ॥

वसन्त रागेण गीयते

वादयते मणिवेणु मुदारं । गलित-मधुर-स्वनवररससारं ॥ क ॥
नृत्यति हरिरिह मोहनरासे ।
रसिकयुवतितति-रचितविलासे ॥ ध्रु० ॥
दर्शयते वहुविध हस्तकभेदं । चलति ललितगतिचित्रमखेदम् ॥ख॥
मध्यविलम्बितद्रुतपदचालं । कलयति गीतपदोचित-तालं ॥ग॥
रत्नखचितपटवलयपटीरं । भ्रमयति नवघनश्याम-शरीरम् ॥घ॥
सहनर्तक-राधामुखविम्वं । चुम्बति चारु रचित परिरम्भम ॥ङ॥

करने के कारण अत्यन्त पीडित होकर रास मध्यस्थ राधा माधव का ध्यान करते २ तत्क्षण सिद्ध देह प्राप्त करके रास मण्डली में प्रविष्ट हुई ॥११४॥

आहा ! धन्य २; रसिक युवती मण्डल के सहित नाना रूपविलास रस परि पूर्ण इस मनोहर रास में श्रीकृष्णचन्द्र नृत्य कर रहे हैं, इस रूप में मणिमय मोहन वंशी वजा रहे हं, जिसका प्रत्येक शब्द उच्चारण मात्र माधुर्य रस का सार प्रकाश करता है ॥क॥

अनेक प्रकार हस्त नृत्य विशेष प्रदर्शन करते हैं । अति आनन्द के साथ आश्चर्यभाव में मनोहर नृत्य भङ्गी का प्रदर्शन करते हैं ॥ख॥

मध्य विलम्बित द्रुत गति से पाद चालन द्वारा संगीत—पदोप योगी भाव प्रकट करते हैं ॥ग॥

नाना रत्न जटित पट्ट वस्त्र,एवं वलय चन्दनादि विभूषित नवजलधर श्यामाङ्ग नृत्यभङ्गि द्वार चारो ओर भ्रमण करते हैं ॥घ॥

मनोहरभाव में राधा को आलिङ्गन कर नृत्य करते २ चातुर्यके

ललितार्पित-ताम्बूलकर्पूरं । रसयति विहित-प्रिया-मुखपूरम् ॥च॥
गीतवादित्र-कलागत पारं । किमपि प्रशसति वरतनुवारम् ॥छ॥
मधुर सरस्वति गीतमुदारं । गणय रसिकजनहरिरससारम् ॥ज॥
हृत्वा कञ्चुकमौक्तिकं खरनखैः कस्याश्चिदुच्चस्तनं
चुम्बन् कामपि संस्वजन्नपि परां नीवीं परस्या हरन् ।
नीत्वैकामपि मण्डलाद्बहिरहो तन्वन् विचित्रां रतिं
राधामौरतउन्मदो विजयते रासे रसज्ञो हरिः ॥ ११५ ॥
ततः स्मेरमुखौ राधामाधवावभिवीक्ष्य ताः ।
प्रविश्य मण्डले तस्मिन् सहसा मज्जतां रसे ॥ ११६ ॥

साथ एक २ बार उनका मुख चुम्बत करते हैं ॥ङ॥

नृत्य समय में ललिता के द्वारा अपने मुख में अर्पित कर्पूर ताम्बूल प्राणप्रिया के मुख में अर्पण कर पुनः उनके मुख से निज रसना द्वारा आदान-प्रदान कर आस्वादन करते हैं ।

सङ्गीत वाद्यकला पारदर्शी वर अङ्गनागण को अति प्रसंशा करते हुए चुम्बनालिङ्गन रूप पारितोषिक प्रदान करतेहैं॥छ॥

हे रसिक भक्तगण ! सरस्वती पाद के मधुर और मनोहर इस गीत को माधुर्य रस का विनियास (गोंद) समझें ।

रसमय श्रीहरि रासमण्डल में नृत्य करते २ परम चातुर्य प्रकट करते हुए श्रीराधा के सुरत रस में उन्मत्त होकर किसी गोपी की कञ्चुकी और मुक्ताहार आदि अपहरण कर उन्नत स्तनों के ऊपर खर नखों द्वारा अङ्कन, किसी को चुम्बन, किसी को आलिङ्गन, किसी की नीवी अपहरण एवं प्रधाना श्रीराधा को मण्डल से बाहिर ले जाकर अति अद्भुत भाव से विलास प्रकट करते हुए शोभित हो रहे हैं ॥ ११५ ॥

एक क्षण के अनन्तर श्रीराधा-राधारमण सखीगण को

स्थाणूनंकुरयन् महाजवसरित् स्रोतांसि संस्तम्भयन्
आभीरी दधिमन्थनं विकलयन् ग्रावावलीं द्रावयन्।
सिञ्चन् प्रेमरसैर्दिशः कुलवधूनीवींञ्च विश्रंसयन्
गोविन्दस्य कवीन्द्रविस्मयकरो वंशीरवः पातु वः ॥११७॥

इति सङ्गीतमाधवे रासविलासो नाम
द्वादशः सर्गः ॥

॥ त्रयोदशः सर्गः ॥

विधुरमाधवः ॥

ताहृङ्-नर्त्तनगानमत्तयुवती-सन्मण्डलान्माधवो
निष्क्रान्तः सह कान्तया द्रुतपदं दुर्गं प्रविष्टो वनम्।
राधायां कृपयातिमुग्धदयिता काचिन्मुदासीत्तयोः
किञ्चिद्दूरत एव वीक्ष्य ललितं धन्या निलीनान्वगात् ॥११८॥

देखकर मृदु २ हँसते २ उसी रासमण्डल में सहसा प्रविष्ट होकर रस सागर में निमग्न होगए ॥ ११६ ॥

परम पण्डित मण्डली को भी विस्मयकारी श्रीकृष्ण की वंशी ध्वनि, मृत तरुलताओं को मुकुलित, महा बेगवती नदीगण के श्रोत को स्तम्भित, गोपियों के दधिमन्थन को विफल, पाषाणों को द्रवीभूत, दशों दिशाओं को प्रेम-रस से आप्लावित, कुलवतीओं के नीवी बन्ध को शिथिल, करते २ आप लोगों को परम-रस में निमग्न करें ॥ ११७ ॥

नागरमणि श्रीकृष्ण ऐसी नृत्य गीत रसोन्मत्त युवतीगण की परम सुन्दर मण्डली से प्राण प्रिया श्रीराधा के साथ द्रुत-गति से निविड़ बन में प्रविष्ट हुए। अति मुग्धा कोई गोप-बाला श्रीराधा की कृपा से परम आनन्द के साथ कुछ दूर से श्रीयुगल-किशोर के शृङ्गार भावजनित नाना क्रिया विशेष दर्शन करती

आसीनौ क्वच कुत्रचिच्च शयितौ कुत्रापि पुष्पोच्चयं
चिन्वानौ सुरतोत्सवाय रुचिरं कुञ्जं प्रविष्टौ क्वचित्।
अन्योन्यांसबलद्भुजौ सहसितौ यातौ क्वचिल्लीलया
श्रीराधामधुसूदनौ रसनिधी सा कापि धन्यान्वगात् ॥ ११९ ॥
तत्र क्षणं कीरगणेरितानि,
प्रियाणि राधाचरितानि शृण्वन् ।
यदा हरिर्मीलितलोचनोऽभूत्
तदैव राधा कुतुकात्तिरोधात् ॥ १२० ॥
अथो गतायां ललितं हसन्त्यां,
लतान्तरे माधवजीवितायाम् ।

अपने को परम सौभाग्यवती जान प्रच्छन्न भाव से उनके पीछे चली ॥ ११८ ॥

वह श्रीराधा की कृपापात्र मुग्धा गोपी अपने को धन्य मान कर प्रच्छन्न भाव से उनका अनुसरण करती है और देखती है—रस सागर श्रीराधा माधव बन में भ्रमण करते २ कहीं परस्पर अङ्ग हेलन देकर बैठते हैं। कहीं दृढ़ालिङ्गन भाव से शयन करते हैं, कहीं नाना प्रकार पुष्पचयन करते हुए परस्पर में सजाते हैं, कहीं सुरत महोत्सव की इच्छा से मनोहर कुञ्ज में प्रविष्ट होकर अभीष्ट पूर्ण करते हैं, कहीं परम उत्सुकता के साथ हँसते हुए परस्पर में स्कंध देश में भुज आरोपण कर बन शोभा देखते २ भ्रमण करते हैं ॥ ११९ ॥

भ्रमण करते २ किसी कुञ्ज में नाना विध विलासान्त में कीरगणों के मुख से निकले परम प्रिय राधा के गुणगान सुनते-सुनते श्रीकृष्ण आनन्द में ऐसे कुछ मुदित नयन हुए कि श्रीराधा कौतूहल क्रम से धीरे २ वहां से अन्तर्हित होगई ॥ १२० ॥

अनन्तर माधव की कोटि प्राण सर्वस्व स्वरूपा श्रीराधा

निमेषमात्रं कलयन्ननन्तं,
कल्पं हरिर्व्याकुल एवमूचे ॥ १२१ ॥

॥ देशवराड़ीरागेण गीयते ॥

तव ललितकुन्तलं विधूत-विधुमण्डलं,
चारुमुखममृत-निधिसारं ।
स्मरति मम मानसं किमपि रति लालसं,
स्यन्दि मृदुहसित-मधुधारं ॥ क ॥
प्रिये क्वासि राधे देहि मयि किमपि शुभदृष्टिं ।
तव निमेष कौतुके किरति मपि दारुणो
विषमसर उग्रशरवृष्टिम् ॥ ध्रु० ॥
स्फुरति तव लोचनं कमल-मदमोचनं
प्रेमरसलहरी-कृत-दोलं ।
कलित-नवकुन्तलं चलदलक संकुलं
भाति मम तदपि सुकपोलम् ॥ ख ॥

मृदु मधुर हँसते २ लता की आड़ में चली गईं, श्रीकृष्ण प्रियतमा को न देखकर एक निमिष मात्र समय को भी अनन्त कल्प मानकर कातर भाव से इस गीत को गाने लगे ॥१२१॥

हे प्रियतमे राधे ! तुम कहां हो ? तुम्हें न देखकर मैं नहीं रह सकता हूँ। आओ एक बार मेरे प्रति साभिलाष दृष्टि वितरण करो। क्या कहूँ जीवितेश्वरि ! तुमारे लव मात्र परिहास में अति भीषण कामदेव मेरे ऊपर तीक्ष्ण २ बाण वर्षा रहा है। तुमारे अद्भुत विलास रस का लोलुप मेरा मन तुमारे मनोहर चञ्चल कुण्डल युक्त सुधा-सागार का सार रत्न स्वरूप स्मित सुधा-धारवर्षी पूर्णचन्द्र बिम्ब विजयी मुखचन्द्र का स्मरण करता है ॥ क ॥

हे प्रिये ! नील कमल दर्पहारी प्रेमरस तरङ्गाघात से परम

देहि तव दर्शनं रक्ष मम जीवनं
चन्द्रमुखि ! कलय निजदासं ।
मयि परमकातरे प्रकृति-मृदुलान्तरे
कल्पयसि कति नु परिहासं ॥ ग ॥
क्षण-विरह-दुःखतो मम भवति चित्ततो
धैर्य्यगिरिरतनु-जयकेतो !
नव कनक चम्पक प्रकररुचिकम्पक
श्रीलतनु-सकल-सुख हेतो ॥घ॥
मिलति कठिनायसे मयि परमसद्दशे
पीनघन कठिन कुचभारे ।
विवृणु हसदाननं दीप्तनवकाननं
कण्ठतट-लुलित-मणिहारे ॥ ङ ॥

चञ्चल तुमारे दोनों नेत्र मुझे स्फूर्ति हो रहे हैं । विलास विशेष में उन्मुक्त केश कलाप शोभित चञ्चल अलकावलि परि व्याप्त तुमारे सुन्दर गण्डद्वय मुझे प्रतीत हो रहे हैं ॥ख॥

हे चन्द्रवदने ! एक बार दर्शन दो मेरे जीवन की रक्षा करो, राधे ! मुझे तुम अपना दास समझो । हे सहज कोमल हृदये ! राधे ! तुमारे दारुण विरह से अति कातर हृदय मेरा और कितना परिहास करोगी, बोलो, तो सही ॥ ग ॥

हे महामन्मथ चक्रवर्ती की विजयपताका स्वरूप राधे ! अभिनव कनक चम्पक समुदाय की कान्ति को विनिन्द, सब प्रकार सुख की आकर तुमारे इस सुमधुर अङ्ग को किसी से भी नहीं भूल सकता, क्या कहूँ तुमारे क्षण काल विरह दुःख से मेरा धैर्य पर्वत चूर २ हो रहा है ॥ घ ॥

हे उत्तुङ्ग कठोर कुचभारे राधे ! तुमारा चिर क्रीतदास

मम मनसि नापरा तव तु गुण तत्परा
कीरवर-ततिभिरुपगीता।
भ्रमरमतात्र मे हृदयमति-विभ्रमे
तत्र किमु नु भव विपरीता॥ च॥
कलय वर चन्द्रकिन् रुचिर रुरुशाव हे
त्वञ्च मम मित्र भव साक्षी।
त्यजति वतजीवनं हरिरतुलयौवनं
नाद्य यदि मिलति हरिणाक्षी॥छ॥
इति वदति राधिका मधुजिति रसाधिका
प्रादुरभूदतिमधुरलीला।

परमाधीन मैं तुमारे साथ मिल रहा हूँ और तुम क्यों इतनी कठोरता धारण किए हो। हे राधे! समय विशेष में तुमारे कण्ठ में हार लटकता रहता है, अभिनव कानन विकाशकारी अति उज्वल हास्ययुक्त मुख दिखाओ॥ ङ॥

इस समय शुक प्रवरोच्चारित तुनारे लीला गुण चरित पूर्ण गान मात्र ही मेरे सम्पूर्ण हृदय में अधिकार कर विहार कर रहा है अन्य कोई स्मृति थी, न है। हे भ्रान्तिशीले! मिथ्या विपरीत धारण क्यों करती हो॥ च॥

इस प्रकार कहते २ श्रीकृष्ण राधा के विरह में अधीर होकर मृग और मयूरों से बोले—हे परम बान्धव मयूर गण! हे मनोहर मृग शिशुकुल! एक बार मेरी बात सुनो, तुम मेरे साक्षी हो, यदि मृगनैनी श्रीराधा इस समय नहीं आती और नहीं मिलती तो यह मैं कृष्ण अतुलनीय रूप यौवन पूर्ण दुःखी जीवन को अभी परित्याग करता हूँ॥छ॥

मधुसूदन के इस प्रकार वाक्य सुनकर परम रसमयी अति विचित्र लीला कारिणी श्रीराधा व्यस्त समस्त भाव से

वेत्ति न सरस्वतिः किमपि परमं ततो
बुद्धिरिह भवति शुभशीला ॥ ज ॥
यं विक्रेतुमपि क्षमासि कृपया योऽयं निजाङ्के कृतो,
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु त्वयि रतो जानाति यो नापरं।
सोऽयन्ते मृदुलाङ्गि कर्कशहृदि न्यस्ताङ्घ्रिपंकेरुहो
लोकानाञ्च निमेषयोः क्षणमपि क्षोभाय पक्षीयति ॥ १२२ ॥
यद् देवर्षि-शुकादि-मृग्यमनिशं यद्वाञ्छनीयं श्रिया
कृष्टा येन विघूर्णिताः प्रियगणा मादयन्ति मत्ता इव।
शम्भु र्यन्मृगयन् सुखञ्च सकलं त्यक्त्वाभवद्भिक्षुको
राधामाधवयो स्तदद्भुत-रस प्रेमा चिरं पातु वः ॥ १२३ ॥

इतिश्री सङ्गीतमाधवे विधुरमाधवो नाम
त्रयोदशः सर्गः ॥

आकर उपस्थित हुई। श्रीसरस्वतीपाद इस लीला विलास रस के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते। इस लीला कौतुक की आलोचना से बुद्धि अति निर्मल एवं कल्याणमयी होगी ॥ ज ॥

हे जीवितेश्वरीराधे! जिस को जहां तुमारी इच्छा हो उसे बेच सकती हो, कृपाकर जिस को अपने वक्षस्थलपर धारण किया है, सोते, बेठने, जगते, जो केवल तुम में ही अनुरक्त है एकमात्र तुमारे दर्शन का व्याघात का भी निमेष के एकलव को भी युग सम मानता है क्षुब्ध होता है–वह में यह कृष्ण–इससे ऐसा परिहास करना उचित है क्या? ॥ १२२ ॥

जिस प्रेमको सुक नारदादि सदा अन्वेषण करने परभी नहीं पाते, जिस प्रेमकी लक्ष्मी वाञ्छा करती है, जो प्रेम में आकृष्ट होकर बिघूर्णित चित्त से प्रिय सखीगण भी उन्मत्तके सम आनन्द उपयोग करती हैं जिस प्रेम के अन्वेषण में शिव सकल

॥ चतुर्दशः सर्गः ॥

राधामाधवविलासः ॥

अथ विरह-विहस्ता स्ताः समुद्वीक्ष्य भूयः
परम-दयितराधामाधवौ कीर्त्तयन्त्यः ।
तदति-करुणधामद्वन्द्वमानन्दकन्दं
रसमयमुपलभ्य प्रेममग्ना बभूवुः ॥ १२४ ॥
काश्चिन् मौक्तिक-माल्य—कज्जलवरालंकार काश्मीरजा-
लेपालक्तककञ्चुकैः प्रियतमां राधां मुदा मण्डयन् ।
गुञ्जाहारवतंस पिञ्छमुकुट-स्रग्गन्धपीताम्बरै
रन्याः साधु हरिं प्रसाध्य दयितां सन्तोषयाञ्चक्रिरे॥१२५॥

मुख को त्याग भिक्षुक बन गए, श्रीराधागोविन्द के वही अद्भुत रसमय विचित्र प्रेम शीघ्र ही तुमारी रक्षा करें अर्थात् तुमारे हृदय में शीघ्र स्फूर्ति प्राप्त हों ॥ १२३ ॥

अनन्तर उस रासमण्डल के मध्य में सखीगण विरह व्याकुल चित्त से परम प्रियतम श्रीराधा माधव के गुण गान करते २ दूरसे बन में उनके पुनः दर्शन को लाभ कर तृषित चातक के समान आनन्दकन्द परम रसमय अति करुण विग्रह युगल के निकट उपस्थित होकर परमानन्द सागर में निमग्न हुईं ॥१२४॥

सेवा परायण कई एक सखी परमानन्द के साथ उनके प्राण कोटि सर्वस्व श्रीराधा को मोती की माला, काजल, नाना भूषण, कुंकुम चन्दनादि विलेपन, अलक्तक और कञ्चुकी आदि से भूषित करने लगीं। अन्य कई एक ने गुंजामाला, कुण्डलादि कर्ण भूषण, मयूर-मुकुट, गन्ध, माला, पीताम्बर आदि से कृष्ण-चन्द्र को सुन्दर रूप में भूषित करके, प्राण-प्रियतमा श्रीराधा को आनन्दित किया ॥ १२५ ॥

एवं निकुञ्जनिलये मृदुलं तदानी
मास्तीर्य्य पुष्पमथ तत्र हरौ निविष्टे।
प्राणेश्वरीं समुपवेश्य च तस्य पार्श्वे,
याता वहि मुमुदिरे प्रिययो र्विलासैः ॥ १२६ ॥
राधागोविन्दनिर्द्वन्द्वरसानन्दाब्धि–मग्नधीः।
सख्यैका कथयन् मोदादन्याभ्यो भारतीं वराम् ॥ १२७ ॥

॥ विभाषरागेण गीयते ॥

करमवलम्ब्य सखीनिवहे विनिवेश्य लतागृह-कोटरे।
नवसङ्गमभयह्री-वलितां वहिरपि याते प्रियगोचरे ॥क॥
निममज्ज सा रस-सागरे क्रीडति व्रजनवनागरे ॥ ध्रु० ॥

सखीगण परमानन्द से उस समय दोनों को सुसज्जित कर निभृत निकुञ्ज में सुकोमल पुष्प बिछाकर शय्या निर्माण कर उस शय्या पर मृदु हँसते २ कृष्ण बिराजें, उनने यत्न पूर्वक प्राणेश्वरी राधा को बाईं ओर बैठाकर धीरे २ बाहिर आकर प्राण प्रियतम रसिक युगल के विविध बिलास दर्शन से परमानन्द सागर में निमग्न हुईं ॥ १२६ ॥

उस समय श्रीराधा माधव के निर्वाध विलास रसानन्द सागर में निमज्जित चित्त कोई नव सखी परमानन्द से दूसरी सखी के आगे परम रसमयी विलास कथा कहने लगी ॥१२७॥

नव-सखी बोली हे प्रिय सहचरीगण ! मधुर बिलास की बात सुनों, बिलास निकुञ्ज में रसमय नागर के समीप अभिनव सङ्गमजनित भयविह्वल एवं लज्जायुक्त राधा के हाथ पकड़ कर बैठाने के अनन्तर सखीगण बाहिर आगईं। उस समय व्रज नव-नगर ने नानाविध बिलास आरम्भ किया अतः श्रीराधा रस सागर में निमग्न होगईं ॥क॥

पृच्छति किमपि किमपि कृतमौना तद्वचनामृतलालसे।
नयति बलादिव तल्पमनल्पक केलि कलाकुल-मानसे ॥ ख ॥
नव कञ्चुकमवमुच्य पृथुस्तन-कृत-खरनख शिखराङ्कणे।
श्लिष्यति गाढतरं स्मरतरलिमभरकृतरवकरकङ्कणे ॥ ग ॥
पिबति तथाधरसीधुरसामृतमथ नानाविध-कृतचुम्बने।
नीविनिहितकर आकुल--शयितातिविहित भ्राटत्यवलम्बने ॥ घ ॥
मत्त करीन्द्र-तुमुल-रति-संगर-रचित-महाद्भुत-विक्रमे।
स्विद्यति-निमीलति प्राणसमोरसि शिशिर-भावकृतविश्रमे ॥ ङ॥
रतिरसमत्ता मनोहर नागरी काम-कलाकृत तोषणे।

तूष्णीभूत (शान्त) राधा के रसमय वचनामृत सुनने के अभिप्राय से कृष्ण अनिर्वचनीय रसमय-प्रश्न करने लगे। महाविलास की बातों में व्याकुल चित्त होकर राधा को कुसुम शय्या पर पौढ़ाने लगे ॥ ख ॥

उन की नव कञ्चुकी छिन कर उन्नत स्तन युगल के ऊपर तीक्ष्ण नखाग्र द्वारा अङ्कित किया एवं काम के वेग से परम चञ्चल होकर इस प्रकार हठ आलिङ्गन किया कि दोनों कंकण बजने लगे ॥ ग ॥

प्राण प्रिया के अधरामृत रस का पान कर उन्मत्तभाव से नानास्थान पर अनेक प्रकार से चुम्बन करने लगे, नीवी बन्धन उन्मोचन की आशा से जोंही हस्तार्पण किया कि प्रिया ने अतिव्याकुल हो शीघ्र ही प्राणवल्लभ का हाथ पकड़ लिया ॥घ॥

तुमुल सुरत संग्राम में मत्त गजराज के समान उनने ऐसा अद्भुत पराक्रम दिखाया कि प्राणसमा श्रीराधा के सुशीतल वक्षस्थल में स्वेदयुक्त अङ्ग में एवं रति रसालस के आवेश में अर्ध निमीलित नेत्र विश्राम करने लगीं ॥ ङ ॥

सुरत रसोन्मत्ता मनोमोहिनी श्रीराधा की कामकला

विकशित कमल-कलिन्द सुताप्लुत मन्द पवन रस पोषणे ॥ च ॥
स्रस्तशिखंड-मुकुट-परिखण्डित-माल्यमृदिततरचित्रके ।
तामपि भूषयति प्रणयेन सुविरचितकुंकुमपत्रके ॥ छ ॥
राधा-पदरति-मुग्धसरस्वति-भाषित-हरिरसवैभवे ।
कुरु हृदयं परभावविभावितमापत न निगमकैतवे ॥ ज ॥
आस्वादेद् यन्मतिरपि सकृन्नैव सर्व्वार्थसारो-
दारा राधा मधुपतिपदाम्भोजमाध्वीकधारा ।
यन्नेत्राभ्यामपि न कलिता स्तन्महानङ्गखेला:
कुञ्जे कुञ्जे सततमिह तज्जीवनाद्यं धिगस्तु ॥१२८॥

विलास वैदग्ध द्वारा परम सन्तोष प्राप्त किया—प्रस्फुटित कमलों की गन्ध एवं यमुना के जल से स्निग्ध वायु द्वारा और भी रस पुष्ट होने-लगा ॥ च ॥

अपना मयूरमुकुट गिर गया है, माला सब छिन्न भिन्न होगई हैं, तिलकादि समस्त श्रृङ्गार मर्दित होगया है तथापि प्रेम के वशीभूत होकर प्राणेश्वरी श्रीराधा को नाना भूषणों से भूषित किया एवं कुंकुम से स्तन युगल के ऊपर पत्र रचना करदी ॥ छ ॥

हे रसिक भक्तगण ! श्रीराधा-पाद-पद्म निष्ठ श्रीसरस्वती पाद के मनोहर वाक्य रूप कृष्ण प्रेमामृत वैभव में चित्त को मधुरता प्लुत करो; नीरस वेदवोधित कर्म ज्ञान काण्डादि कैतव में मत फँसना ॥ज॥

श्रीवृन्दावन की कुञ्ज २ में सकल पुरुषार्थ का सार भूत परम महत् श्रीराधागोविन्द के पादपद्म मकरन्द प्रवाह का जिसके चित्त ने एक बार भी आस्वादन नहीं किया, एवं निरवधि अनुष्ठित उनके महामन्मथ लीला विलास कौतुक एक बार

नत्वमिच्छसि चेन्मुग्धे रसाब्धावगाहनं ।
महाप्रेमोत्सवेनैव भज राधापदाम्बुजम् ॥ १२९ ॥
सर्वैः प्रेमरसामृतैः सुघटिता नूनं व्रजस्त्रीघटा,
सा यच्छ्रीचरण-स्फुरन्नखमणिज्योतिःकलांशांशका ।
यद्गोविन्दभुजान्तरे रतिकलारङ्गेण दोलायितं,
तद्वस्तु श्रुतिमस्तकैरकलितं राधाभिदं पातु वः ॥ १३० ॥

इति श्रीसङ्गीतमाधवे श्रीराधामाधवविलासो
नाम चतुर्दशः सर्गः ॥

॥ पञ्चदशः सर्गः ॥

निजोल्लासः ।

अखिलभुवन-सारं प्रेमसर्वस्वभारं,
नवमदनविकारं सौख्यसिन्धुप्रचारम् ।

भी जिसके नेत्र गोचर नहीं हुआ, उसके जीवन आदि को धिक्कार है ! जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है ॥१२८॥

रे मन ! यदि तू परम मनोहर रस सागर में अवगाहन करने की इच्छा रखता है तो महा प्रेमरस के साथ श्रीश्याम मनो मोहिनी निकुञ्ज विलासिनी श्रीराधा के पादपद्म को भज (सेवन कर) ॥१२९॥

सब प्रकार रसामृत के द्वारा सुनिर्मित अर्थात् सर्वविध प्रेम रसमयी सुप्रसिद्धा, व्रजाङ्गना गण जिनकी श्रीचरण की उज्वल नखमणि ज्योति की कला विशेष के अंशांश स्वरूप, जो वस्तु सुरतरङ्ग विशेष में भी गोविन्द के विशाल वक्षः स्थल पर दोलायमान, श्रुति उपनिषद्गण के भी अगोचरीभूत, वह राधा नामक वस्तु लोगों को परमानन्दित करें ॥ १३० ॥

हे रसिक भक्तगण ! चतुर्दश भुवन में सर्व श्रेष्ठ, महा-

मधुररसविहारं राधिकाकंठहारं,
प्रणमत सुकुमारं श्रीयशोदाकुमारम् ॥ १३१ ॥
श्रीवृन्दावनविपिनेन्द्रजीवशक्तिः
सत्प्रेमोज्ज्वल-रससारकल्पवल्ली ।
सा राधा सतत महामनोज-बाधा
संजीयान्मधुरवयो विलास-सीमा ॥ १३२ ॥

॥ गुर्ज्जरीरागेण गीयते ॥

प्रवहदमृतरसवृतपरिहासे । शिवविधिशुकनारदजनिताशे ॥क॥

प्रेममय विग्रह, अभिनव कामकला पूर्ण हृदय अर्थात धीरललित, सुख सागर स्वरूप, मधुर रस में ही जिनका सदा विहार अर्थात् शृङ्गार रसदायी श्रीराधिका के कण्ठहार,किम्बा श्रीराधा जिनका कंठ मणि हार, श्रीराधारमण सुन्दर मे भी परम सुन्दर उस यशोदानन्दन का परम प्रणय के साथ आश्रय करो (लो)॥१३१॥

श्रीवृन्दावनेन्द्र रसराज श्रीकृष्णचन्द्र की प्राण कोटि सर्वस्व रूपा, मादनाख्य महाभावोज्वल रस विनिर्यास की कल्पलता, निरवधि मूर्तिमान् महाशृङ्गार रस धर्षिता, नित्य नवकिशोरवय एवं तदुचित लीला विलास की पराकाष्ठा, उस श्री कृष्णविलासिनी श्रीराधा की जय हो ॥१३२॥

(सिद्ध देह ग्रन्थ कर्ता निज गुरु रूपा सहचरी के चरणों में प्रार्थना करते हैं; हे अधीश्वरी ! मेरा मन अनिर्वचनीय प्रेमरस परिपूर्ण श्रीराधा माधव के लीला विलास में प्रवेश करें, जिससे कि किसी अन्य वस्तु की आकांक्षा न रहे,ऐसी कृपा करो) जिस लीला में धारावाहिक अमृत रस प्रवाह परिपूर्ण परिहास रस वर्तमान, शिव ब्रह्मा शुक नारद प्रभृति जिस लीला की प्राप्ति का आशापोषण करते हैं ॥क॥

राधामाधवकेलिविलासे । विशतु मनो मम प्रेमविकाशे ॥ध्रु०॥
वृन्दाबन-वन-सहज निवासे । नवरस भावित मति प्रतिभासे ॥ख॥
तिक्तगीकृतमुक्तिबिताने । हरिचरणोज्ज्वलभावनिदाने ॥ग॥
प्रतिपदजृम्भित-मदन विकारे । परमरसामृत-सागरसारे ॥घ॥
शुकृत-विधिपद-मुनिवरगीते । तुच्छत्रिगुणजडप्रकृतिमतीते ॥ङ॥
राधाप्रिय-परिजन-कलनीये । त्रिदिननिगमवर-सम्बरणीये ॥च॥
अन्तरहित-महद्-कलित-पारे । बहुविध-भङ्गिम-प्रेम-प्रसारे ॥छ॥
अतिरस लोल-सरस्वतिगाने । कुरुत हृदयमिह परमनिधाने ॥ज॥

एक मात्र वृन्दाबन बन मध्य में ही जिनका निवास है, अन्यत्र कही भी नहीं, मधुर रस विभावित राधा दासीगण के हृदय में ही एक मात्र प्रतिफलित होता है ॥ख॥

जिस लीला के आगे भुक्ति मुक्ति प्रभृति अत्यन्त कटुतर प्रतीत होती हैं, राधा दासी भाव में अहैतुक उज्वल अनुराग ही एक मात्र ही जिसका आश्रय है ॥ग॥

जो कि क्षण २ वर्द्धित अप्राकृत नवीन मदन विकार युक्त परम रसामृत की सार स्वरूप हैं ॥घ॥

ब्रह्म पद तुच्छ कारी मुनिवर श्री शुक देव जिस केलि विलास के सम्बन्ध में उच्च कण्ठ से गान कर गए हैं तुच्छ त्रिगुण मयी जड़ प्रकृति से अतीत ॥ङ॥

एक मात्र श्रीराधा की प्रिय सखीगण का ही आस्वादनीय सुप्रसिद्ध अति उपनिषदादि के अगोचर ॥च॥

अपरि सीम महत्तत्वादि भी जिसकी सीमा की निर्देश नहीं कर सकते एवं बहुविध कला–विलास–वैदग्धी पूर्ण प्रेम सर्वदा विकाश होता है ॥छ॥

हे परम मधुररस लोलुप रसिक भक्तगण ! महारत्न स्वरूप सरस्वती पाद के इस गान में चित्तको सदा अभि निविष्ट करो॥ज॥

दग्धो भीमभवाटवी-भ्रमगतो दुःखौघदावानलै
गदाय प्रियमुग्धवृत्तिकरिणीः सद्वर्त्मगो जीवितः
सान्द्रानन्दरसातिशीतलतरे तापत्रयोन्मूलने
राधाकेलिसुधाम्बुधौ मम मनो मत्तः करी मज्जतु ॥१३३॥

॥ श्रीरागेण गीयते ॥

वृन्दारण्य-चराचर-वृन्दं । श्रयत महारसवैभवकन्दम् ॥क॥
गायत राधा माधवलीलाम् । कुरुत मतिं रसरञ्जितशीलाम् ॥ध्रु०॥
पश्यत राधाकेलि-निकुंजं । प्रकटमहाद्भुतरतिरसपुञ्जम् ॥ख॥
चरत विकुण्ठादपि रमणीये ! व्रजवलये शिवविधि-कमनीये ॥ग॥
पुलिने पुलिने तपन सुतायाः । भ्रमत न यत्र प्रसरति माया ॥घ॥

अतिभयानक संसार वन भ्रमण का हेतु आध्यात्मिकादि दुःखराशिदावानल से पुनः २ दग्धीभूत मेरा मन रूपी मदमत्त हाथी मोह के वश प्रिय वस्तु में आसक्ति रूप हथनियों का सङ्ग कर अथ साधुमार्गानुगामी होकर नव जीवन लाभ पूर्वक निविड प्रेमरसके द्वारा अति शीतल,त्रिताप विनाशक श्री राधाके विलास सुधा सागर से निमग्न होकर परम शान्ति लाभ करें ॥१३३॥

हे रसिक भक्तगण ! प्रेमरस सम्पत्ति के मूलाधार स्वरूप वृन्दावन के स्थावर जङ्गम समूह का आश्रय लो श्री राधा माधव के लीला विलासादि का कीर्तन करो । मन को नवरस से रञ्जित करो ॥क॥

मूर्तिमान अद्भुत विलास रस समूह जहां सदा विराजमान है उस राधा के केलि निकुञ्जका दर्शन करो ॥ख॥

शिव ब्रह्मादि को वाञ्छनीय वैकुण्ठ से भी रमणीय व्रजमण्डल में विचरण करो ॥ग॥

जहां माया का अधिकार नहीं उस यमुना के पुलिन २ में भ्रमण करो ॥घ॥

परमानन्द-रसाम्बुधिसारे। नयत मनो ब्रजराज-कुमारे ॥ ङ ॥
मुञ्चत विषम-विषयरसगन्धं। घटयत हरिपद-दृढ़रतिबन्धम् ॥च॥
मृगयत राधापदरसभाजं। परिचिनुतोन्मद-नवरसराजम् ॥ छ ॥
इति हितसार-सरस्वति-गीतं। जनयतु कञ्चन भावमधीनम् ॥ज॥
दूरान्मुञ्च वराङ्गनादिविषयान् कर्मादिमार्गे वृथा
खेदं न प्रथयेन्द्रजालसदृशी विद्धीह सिद्धीरपि।
मुक्तिं तिक्ततराञ्च थुत्कुरु परं वृन्दावनेन्द्रं भज
श्रीराधानुचरीभवंञ्च कलयेस्तत्रापि कञ्चिद्रसम् ॥ १३४ ॥

प्रेमसुधा रस सागर के महारत्न स्वरूप श्री नन्दनन्दन में मन को निवेश करो ॥ङ॥

विषमय विषय रस की गन्धमात्र भी जहाँ हो दूर से ही उसका परित्याग करो, हरिपद में दृढ़ अनुराग करो ॥च॥

श्रीराधा चरण रस रसिक सखीगण का अन्वेषण करो। राधादास्य अङ्गीकार कर परमरसोन्मत्त नागर वर की प्रेम सेवानुशीलन करो ॥ छ ॥

श्रीसरस्वती पाद रचित इस परमहित कर गान का कीर्तन कर कोई अनिर्वचनीय भाव प्रकाशित हो ॥ ज ॥

श्रेष्ठ कामिनी काञ्चनादि विषय को दूर से त्याग करो। कर्मज्ञानादि मार्ग में जाकर व्यर्थ दुःखभोग मत करना, इसभजन मार्ग में अष्टसिद्धि को इन्द्रजाल के समान कपट समझो। सायुज्यादि सकल मुक्तिको कटुतर जान कर धिक्कारते हुए परित्याग करो। श्रीराधादास्य अङ्गीकार कर श्रीवृन्दावन चन्द्रका भजन करो। ऐसे भजन से ही अनास्वादितचर-रसविशेष प्राप्त होगा ॥ १३४ ॥

या पूर्व्वं मिलनाद्बभूव विमुखीभावादिकाव्यादिका,
या वा निद्रितचौरवन्मिलितयोः सध्वान्तरात्रावभूत् ।
या वृन्दावन-मञ्जुकुञ्जकुहरे कृष्णातरङ्गेषु वा
राधामाधवयो र्विलास-लहरी सा सा चिरं पातु वः ॥ १३५ ॥

इति श्रीसङ्गीतमाधवे निजोल्लासः
नाम पञ्चदशः सर्गः ॥

॥ षोडशः सर्गः ॥

अश्रौघैर्मकरन्द-बिन्दुनिवहैं निंस्यन्दिभिः सुन्दरं,
नेत्रेन्दीवरमादधत् सुपुलकोत्कम्पञ्च बिभ्रद् वपुः ।
वाचश्चापि सगद्‌गदा हरि हरीत्यानन्दिनी रुद्‌गिरन्
प्रेमानन्दरसोत्सवं दिशतु वो देवः शचीनन्दनः ॥१३६॥

श्रीयुगलकिशोर की प्रकाशभाव में मिलन से पूर्व वे मुख्य भावादि युक्त वाम्य (कपट) पूर्ण एवं स्वाभिलाष प्रकाशिका जो-जो लीला हुई हैं, पुनः अन्धकार रात्रि में श्रीराधा को निद्रित होने पर ठीक चोर की तरह श्रीकृष्ण के मिलन में जो-जो लीला आचरित हुई हैं, वृन्दाबन की मनोहर कुञ्ज में जो-जो लीला विलास एवं यमुना के जल में जो-जो लीला हुई हैं, वे वे लीला लहरी आप लोगों को प्रेमसागर में निमज्जित करें (डुबोदें)॥१३५॥

झरने के समान क्षरणशील, मकरन्दबिन्दु सदृश अश्रु समूह द्वारा सुशोभित नयन कमलधारी, सुन्दर पुलक कम्पयुक्त देहवाले, 'हरि हरि' इस प्रकार आनन्दपूर्ण सप्रेम गद्‌गद वाक्य उच्चारणकारी वे महावदान्य शचीनन्दन श्रीगौराङ्गसुन्दर आप लोगों को प्रेमानन्द रसोत्सव प्रदान करें ॥ १३६ ॥

खलदोष-प्रवल-गरलैरर्थतः शब्दतो वा,
कामं नष्टां कृतमतिशुभां कुर्वतां ये द्विजिह्वाः ।
गाढं मग्नाः परमरसदे राधिका-केलिसिन्धौ,
जातस्नेहाः स्तुतिभिरमृतैर्जीवयिष्यन्ति भूयः ॥१३७॥
अलंकुर्य्युरलङ्कारैः प्रेम्ना दध्युर्मनः क्वचित् ।
कण्ठे कुर्वन्तु रसिकाः कृतिं मुग्धामिमां मम ॥ १३८ ॥
श्रीराधिकामाधवयोः पदाम्बुजे,
निर्म्माय यत्काव्यमिदं मयार्पितम् ।
तेनैव तौ प्रीतहृदौ कदापि मा
मत्यद्भुतां दर्शयतो रहः कलाम् ॥ १३९ ॥

इति प्रेमरसाधिदेवतानुचरी वुभूषता केनापि प्रकटीकृतम् ॥
इति श्रीप्रवोधानन्द सरस्वतिगोस्वामिना विरचितं सङ्गीतमाधवाख्यं गीतिकाव्यं समाप्तम् ॥

खल रूप सर्पगण अर्थालङ्कार, शब्दालङ्कार प्रभृति दोष रूप विषम विष द्वारा इस परम कल्याणमय गीति काव्य को दूषित करें इसका मुझे खेद नहीं। आशा यह है कि श्रीराधा के परम रस प्रद विलास सागर में प्रगाढ़ भाव से निमग्न स्निग्ध हृदय रसिक भक्तगण अमृत रूप स्तुति द्वारा अर्थात् परम प्रेम-मय आस्वादन द्वारा पुनः जीवित करेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥१३७॥

मेरे इस मनोरम श्रीराधा माधव के लीला विलासमय गीतिकाव्य मधुर रस रसित हृदय भक्तगण शब्दालंकार एवं अर्थालंकारा आदि से अलंकृत करें, परम प्रीति के साथ किसी रसमय समय में मनोभिनिवेश करें, एवं सदा आस्वादन के लिए कण्ठ भूषण बनाकर रखें—यही मेरी प्रार्थना है ॥१३८॥

श्रीगुरु रूपा सहचरी की कृपा आशीर्वाद से इस परम

रसमय गीति काव्य का निर्माण कर मैंने श्रीराधा माधव के चरण-कमल में अर्पण किया मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि इसके द्वारा श्रीराधा माधव सन्तुष्ट चित्त होकर किसी रसमय समय में मुझे अति विचित्र परम निभृत निधुवनोत्सव का दर्शन करायेंगे ॥ १३६ ॥

इस प्रकार भाव स्वरूप श्रीराधा की अन्तरङ्ग दासीत्व के अभिलाषी किसी व्यक्तिके द्वारा यह गीति काव्य प्रकाशित हुआ।

अष्टाभ्राभ्रदृगात्मके रविदिने शुक्ले दले माधवे,
वासन्ते रविमुत्तरेणचरिते श्रीमन्नृसिंहोद्‌गमे।
पापघ्नं मधुराभिरामरमणं लीलाचरित्रं महत्
श्रीमद्रासविहारिणो रसमयं भाषान्तरं प्रापितम् ॥

❀ ❀ ❀

श्रीनिकुञ्जकेलिस्तोत्रं

तल्पे पल्लवकल्पिते सुकुसुमे रम्ये निविष्टौ सुखं
व्यामुग्धौ रतिकेलिभिः प्रमुदितौ घूर्णायमानेक्षणौ।
शश्वन्मानस-हृद्य-मन्मथमदावेशाति मुग्धाननौ
पश्यालि ! स्फुटकेलिकुञ्जसदने श्रीराधिकामाधवौ॥१॥

रासोल्लासविलासिनौ नव नव प्रेमामृतस्यन्दिनौ
लीलाचंचललोचनाञ्चललसन्नासाग्रमुक्तोज्ज्वलौ।
प्रेमानन्दमुखारविन्दमधुरौ सौन्दर्य्यसाराञ्चितौ
पश्यालि ! स्फुटकेलिकुञ्जसदने श्रीराधिकामाधवौ ॥२॥

शुद्धस्वर्णनवीनमेघसुभगौ माधुर्य्यकल्लोलिनौ
लावण्यामृतमेदुरौ तरुणिमाप्रोल्लासिकैशोरकौ।
उत्फुल्लासितशोणपद्मनयनौ कन्दर्प कोटिद्युती
पश्यालि ! स्फुटकेलिकुञ्जसदने श्रीराधिकामाधवौ ॥३॥

उत्तंसीकृतकेकिपिच्छविलसद्‌भृङ्गावली विभ्रम-
द्वासन्तौ नवमल्लिरम्यकवरी चूडौ सुबिम्बाधरौ।
अन्योन्यं मुखपंकजावकलनौ प्रोत्साररमारोत्सवौ
पश्यालि ! स्फुटकेलिकुञ्जसदने श्रीराधिकामाधवौ ॥४॥

आनन्दामृतसागरौ रसकलावैदग्ध्यवृन्दालयौ
वृन्दारण्यसुधाकरौ स्मरमहाकेलीकलापण्डितौ।
उन्मीलन्नवकुन्ददामरुचिरावन्योन्यमालिङ्गितौ
पश्यालि ! स्फुटकेलिकुञ्जसदने श्रीराधिकामाधवौ ॥५॥

कस्तुरीतिलकावली सुविलसद्भालौ भ्रमद्‌भ्रूलतौ
चारुस्निग्धकपोलमण्डपचलद्भास्वन्मणीकुण्डलौ।
ईषद्धाससुधाभिषेचनवलन्नर्म प्रमोदौ मिथः
पश्यालि ! स्फुटकेलिकुञ्जसदने श्रीराधिकामाधवौ ॥६॥

उद्‌भ्राजन्मृगनाभिबिन्दुचिबुकश्रीवत्सवक्षःश्रियौ
लीलाम्भोजविशुद्धहेमरुचिरे सद्वाससी बिभ्रतौ।
नित्यं नूतनरम्यवेशललितौ क्रीडाकलालम्पटौ
पश्यालि ! स्फुटकेलिकुञ्जसदने श्रीराधिकामाधवौ ॥७॥

अन्योन्यं कृतमुग्धवेशरचनौ नानामणिप्रस्फुरत्
स्वर्णस्वङ्गदमुद्रिकावलयसच्छायालसच्छ्रीभुजौ।
काश्मीरागुरुचन्दनाक्तवपुषौ त्रैलोक्यसंमोहनौ
पश्यालि ! स्फुटकेलिकुञ्जसदने श्रीराधिकामाधवौ ॥८॥

भास्वद्भासुरचारुहारविलसद्वक्षोजवक्षश्छवी
चञ्चत्काञ्चनकाञ्चीदाममधुरश्रोणीतटौ श्रीनटौ।
श्रीमल्लोहितकञ्जगञ्जनपदे सिञ्जानमञ्जीरकौ
पश्यालि ! स्फुटकेलिकुञ्जसदने श्रीराधिकामाधवौ ॥ ॥

संहृष्टौ घनचुम्बनालपरीहासामृतासेचना-
दाश्लेषान्मृदुमन्दमञ्जुहसितात् स्निग्धावलोकान्मुहुः।
त्रैलोक्याद्भुतसुन्दरौ रतिकलावैचित्रपारंगतौ
पश्यालि ! स्फुटकेलिकुञ्जसदने श्रीराधिकामाधवौ ॥१०॥

साक्षान्मन्मथमन्मथौ रसवहल्लीलातरङ्गार्णवौ
प्रेमान्धौ रतिलालसौ रसभरौ शृङ्गारबल्लीद्रुमौ।
मूर्त्याभूषणभूषणाङ्गकलया व्यामोहयन्तौ मिथः
पश्यालि ! स्फुटकेलिकुञ्जसदने श्रीराधिकामाधवौ ॥११॥

पीयूषद्युतिकोटिनिन्दितलसल्लदमौलब्धौ माधवौ
स्निग्धौ दर्शनशीतलौ प्रणयिनौ प्राणाधिकस्नेहिनौ।
प्राणेशौ रसवारिधी घनतरप्रोन्मीलदानन्ददौ
पश्यालि ! स्फुटकेलिकुञ्जसदने श्रीराधिकामाधवौ ॥१२॥

एतद्द्वादशकं निकुञ्जगृहिणोः श्रीराधिकाकृष्णयो
र्ये शृण्वन्ति पठन्ति चित्तरमणं श्रीकुञ्जकेल्याख्यकं।
प्रेमाणां पदपंकजे रसवतोः प्राणेशयोस्त्वेतयोः।
सान्द्रानन्दरसामृतैकवपुषो स्ते प्राप्नुवन्ति ध्रुवम् ॥

इति श्रीमद्रसिकानन्दगोस्वामिना विरचितं
कुञ्जकेलिस्तोत्रं समाप्तम् ॥

यह पुस्तक तथा प्रकाशित अन्य पुस्तकें मिलने का पता—

१—श्रीराम-निवास खेतान की दूकान सवामनशालग्रामजी मन्दिर के नीचे (लोई बाजार) वृन्दाबन।

२—बाबा महन्त उद्धारणदासजी, कुसुमसरोवर, गवालियर—मन्दिर, पो० राधाकुण्ड, (मथुरा)

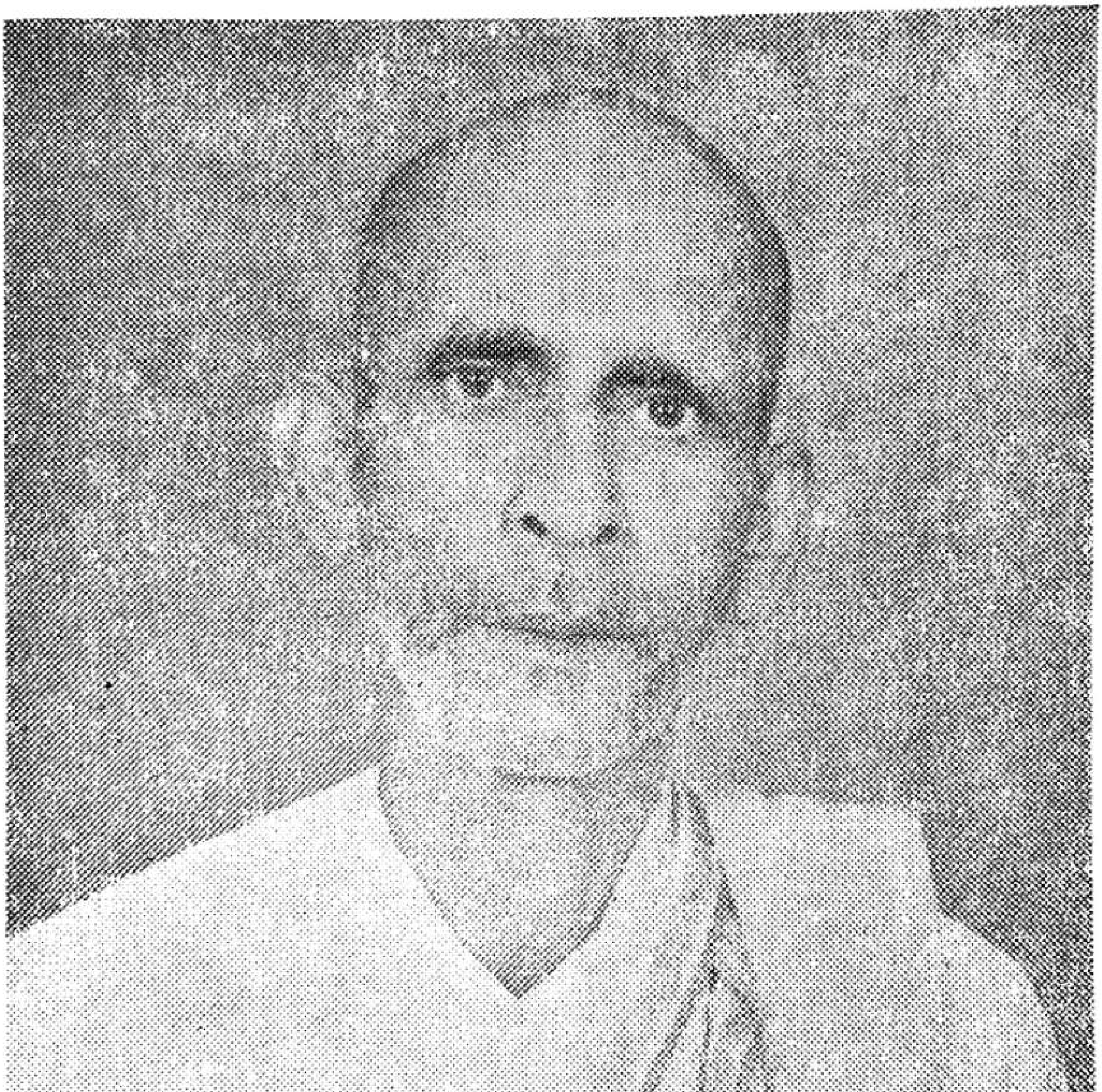
३—हीरालाल जी की दूकान, चौकबाजार, मथुरा (पिआऊ के सामने)

४—श्रीरामदास शास्त्री जी, भक्तभारत कार्य्यालय, चारसम्प्रदाय-आश्रम, वृन्दाबन।

❀ समर्पण पत्रम् ❀

श्री श्री राधारमण चरणदास देवस्यानुचर प्रवरस्य
सकल देश प्रसिद्ध कीर्त्तिराशेः, प्रेम मात्र सर्व्वस्व
कृतस्य, निरन्तर सात्विक भावा वल्या
विभूषितस्य, दी न ता सा ग र स्य,
मधुर स्वरालापैः सर्वदा गौर
कीर्त्तनकर्त्तुः श्रीरामदासेति
नाम्ना प्रसिद्धस्य, मदीय
आराध्यदेवस्य, श्रीगुरु
देवस्य, बाबाजीमहा
राजस्यप्रीत्यर्थे
समर्पितेदं ग्रन्थद्वयं।

लोक साहित्य प्रेस, मथुरा।



बाबा कृष्णदास जी